योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 29

मई 1996

अंक : 2

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई, आगरा

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेश चन्द्र शर्मा

मई १९९६

इस अंक में पढ़िए

❀ मृलीकं सुहवो न एधि १

❀ गुरुदेव क्या ? विशेष लेख) २
—योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ प्राणाविरुद्ध जीव (सम्पादकीय) ७

❀ क्रियायोग की साधना एवम् समाधि ९
—श्री पूर्णचन्द्र पन्त

❀ गुरुदेव ! महात्मा के अनुभव १५
—श्री केशवदेव उपाध्याय

❀ प्रेरणादायक श्री प्रभु-कृपा प्रसंग १९
—श्री रमाकान्त उपाध्याय उर्फ कन्हैया

❀ अध्यात्म नवयुग के सूत्रात्मा—
योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २२
—श्रीमति कविता शर्मा

❀ एक पत्नीव्रती, यति व बालब्रह्मचारी—
भगवान श्रीकृष्ण २५
—श्री नारायण दत्त शास्त्री

❀ भव से पार कैसे हों ? ३१
—श्री विष्णुप्रसाद व्यास

❀ प्राणोत्कर्षकाल में नामस्मरण का महत्त्व ३८
—श्री हिमांशु

❀ कल्पवृक्ष (कविता) ४१
—श्री बृजमोहन वाशिष्ठ

वार्षिक मूल्य ६० रु० । द्विवार्षिक मूल्य ११० रु० ।
इस अङ्क का मूल्य ६ रु० ।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष २६ | **अङ्क २** | **मई १९९६**

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुविधं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

मृलीकं सुहवो न एधि

स त्वं नो अग्ने अवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृलीकं सुहवो न एधि ॥

(ऋ० ४/१/५)

अर्थात्

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! उषा का उदय हो गया है, अविवेकरूपी रात्रि का तम दूर हो चुका है। इस पावन वेला में तुम मेरे निकटतम आ जाओ, ऊपर से नीचे उतर आओ, परम से अवम बन जाओ, तुम्हारी ऊँचाई तक मैं न पहुँच सकूँगा। अतः तुम्हीं मेरी भूमि तक आ जाओ और वहाँ मेरे वारक, अवरोधक, तुम तक पहुँचने में बाधा डालने वाले मेरे इन बन्धनों को काट दो। पिता मेरी यह उषाकाल वाली स्थिति तुम्हें सुख देगी, तुम्हें प्रसन्न करेगी। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो और मेरे लिये सुहव हो जाओ, सुगमता से पुकारने योग्य बन जाओ।

विशेष लेख :—

गुरुदेव क्या ?

❀ योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्रद्धा और निष्ठा–

हमारे शास्त्रों में विविध प्रकार की उपासनाओं का वर्णन मिलता है वैसे तो शास्त्रीय नियम है—

मुण्डे - मुण्डे मतिर्भिन्ना ।

अर्थात् संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियां भिन्न-भिन्न होती हैं और अपनी अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति, उपासना के मार्ग में निकलता है किन्तु फिर भी एक प्रश्न एक उपासक के सामने बना रहता है। वह कौन है और कितने शक्तिशाली हैं ? साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी श्लोक के अन्दर हो जाता है—

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद् गुरु स्त्रिजगद्गुरुः ।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् साधक को चाहिये वह अपने इष्टदेव को सकल अण्ड ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरुदेव को तीन लोकों का गुरु समझे और प्राणीमात्र के अन्दर ओत-प्रोत रहने वाले दिव्य चेतन को अपनी ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

अर्थात्, परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है और जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रगट कर दिया। धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था। उसको केवल मात्र मन के बहलाने के लिए किसी पण्डित ने कह दिया था कि तुम्हारे हाथ में जो पत्थर का टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्याम सुन्दर छिपे हुए हैं। उनके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूंढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। एक धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथाएं हैं जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया। इसलिये 'मन्नाथस्त्रि जगन्नाथो' की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्यमान कर ही सकता है।

तात्विक बात—किन्तु तात्विक बात क्या है, इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस

समय देखते हैं कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्रजी हैं। और इसके लिये प्रबल प्रमाण है सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उसका परित्याग कर दिया था। उसका अपराध इतना ही था कि उसने भगवान शिव की अर्द्धाङ्गिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार नहीं हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिए कर दिया क्योंकि उसने उनके आराध्यदेव श्री राम की पत्नी सीता का रूप धारण किया जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी-सी गलती का इतना कटु परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अङ्गीकार नहीं किया, तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्द्धाङ्गिन रूप से उसका मिलन फिर सती रूप से न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से ही हुआ, पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम भगवान शिव के आराध्यदेव हैं उधर पद्म पुराणन्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्रीराम को जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व इन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जाप किया व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया, परिणामस्वरूप भगवान शिव प्रगट होने का विशद वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव वृषभ रूप में विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर के श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा—

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघुद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोक मर्हसि॥

अर्थात्, हे राम तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो, तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये, जिस समय श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध करना आरम्भ किया उससे पहिले उन्होंने अपने आराध्य देव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र के किनारे की और भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे, उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने वनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहाँ आराधना की उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रशादम करोद्विभुः।

अर्थात्, हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह से आभासित होता है कि भगवान सदाशिव

श्रीराम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाल-लीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और अपना इष्टदेव बतला करके यशोदा जी से प्रार्थना करके उनके दर्शन करते हैं और उधर द्वारिकावास के समय में रुक्मणी ने पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तपस्या की, परिणामस्वरूप उनके घर में रुक्मणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ-साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव के पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है।

एक बार माध्यान्हिक नित्य कर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे, उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये, उस समय श्रीकृष्ण भगवान शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया—

त्वं विष्णुः कमला कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतद् सर्वं ब्रवास्मान् ॥

अर्थात्, हे श्रीकृष्ण तुम स्वयं परमात्मा जगत् गुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार से हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिए स्पष्ट खोलकर समझाओ, भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्य देव किस प्रकार से हैं?

भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया—हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्त्विकी बात को जानते हो फिर भी तुमने लोक हित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो—

ज्योतिर्यत परमानन्द सावधान मतिः श्रृणु।
वामांगाद्भवतस्तस्य सोऽहं विष्णुरिति स्मृतः॥
जनयामास धातारम् दक्षिणांगात्सदाशिवः।
मध्य तो रुद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः॥
तपस्तपन्तु भावत्सा इति तान् ब्रवीच्छिवः॥

अर्थात्, जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसीलिये विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्माजी को पैदा किया, और मध्य भाग से रुद्र जी को पैदा किया, और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान सदाशिव ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो! तुम तप करो। इस लेख से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही हैं और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत में—

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथाएँ मिलती हैं—एक बार ब्रह्मा, विष्णु शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले। वह लोक

बड़ा दिव्य था जिसको ये लोग पहले से जानते ही नहीं थे। जब उस लोक में वे आगे बढ़ते गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्ट भुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्योंही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवती स्त्रियां बन गये। जब आपने आपकी यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णु भगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय पूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा कि हे माता!

ज्ञातंमयाखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टम।
त्वत्तोऽस्य सम्भवलयोऽपि मातरस्य॥
अस्माभिरत्रभवने हरिरन्य एव दृष्ट।
शिवः कमलजः प्रथित प्रभावः॥
अन्येषु भुवनेषु न सन्ति किन्ते।
नाविद्म देवि तव सुप्रभावम।

अर्थात्, हे माता! हमने यहाँ आकर के यह जान लिया कि चूंकि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय तुमसे ही है, हमने इसी लोक में आकर के हरि और ही देखे, इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञान होता है भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, और-और ही होंगे। हे माता हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्व है, जिस तत्व की यह स्वयं भी आराधना करते हों। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनायी थी वह अब मुझे पूरी-पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके उस गीता का उपदेश मुझे दुबारा कर दीजिये। अर्जुन का ऐसा प्रश्न करने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन तुमने यह बड़ी भारी भूल की जो उस परमोपदेश को भुला दिया है।

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तु ह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया॥

हे अर्जुन! तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बड़ी भारी भूल की। वह उपदेश तो मैंने योगयुक्त होकर किया था इसलिये वह स्वयं परब्रह्म का उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा था वैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को भी पढ़करके श्रीकृष्ण का योगयुक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तात्पर्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह स्पष्ट होता है कि राम के रूप में भी शिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही सत्य की उपासना की थी जो परात्पर है और सर्वतो बन्ध है। सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं और वह सत्ता इनसे भी परे है। हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में भी गुरुदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव है। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही है।

गुरु प्रसाद—

गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा, विष्णु महेश्वराः ।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया ॥

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अलौकिक सत्ता है जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम ध्येय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कह दिया है—

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदयां सुमिवरयजेत ।
गुरुभक्ति सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः ॥
गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥

अर्थात्, वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस सब को छोड़कर के परम ध्येय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये, गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है, यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहां पर गुरु-भक्ति की चर्चाएं चला करती हैं वहां से मनुष्य अपना नाक-मुंह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते हैं कि यह गुरुडम ढकोसला है। एक आदमी का प्रपञ्च है व कुछ भोले-भाले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है, ऐसा नहीं होना चाहिये किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्गुरु तत्व को बिल्कुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् का लेख है—

यस्य देवे परां भक्ति यथा देवे तथा गुरु गुरोः ।
तस्यैते कथिताह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ॥

अर्थात्, मनुष्य की जैसे अपने इष्टदेव में श्रद्धा हो वैसे ही गुरुदेव में होनी चाहिये तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखना चाहिए और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए, किन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप है उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योगदर्शन में भगवान पतञ्जलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए इस सूत्र की रचना की—

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यास देव जी ने ये पंक्तियां लिखी हैं—

पूर्वेहि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते
यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्त्तते ।
स एष पूर्वेषामपि गुरुः यथाऽस्य
सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या, सिद्धस्तथाऽति
क्रान्तसर्गा दिष्वपि प्रत्येतव्यः ॥ (शेष पृष्ठ ३६ पर पढ़िये)

★ प्राणाधिरूढ़ जीव ★

सामान्य रूप से मानव शरीर में प्राण की गति भ्रूमध्य से मूलाधार पर्यन्त रहती है। मूलाधार पर्यन्त भी सभी का प्राण गतिमान नहीं रहता। गहन चिन्तन करने वाले एवं योग-साधक का प्राण मूलाधार पर्यन्त गतिशील रहा करता है। मानव शरीर में कुछ नाड़ियाँ रस रक्त का वहन करने वाली हैं। कुछ प्राणों का ही वहन करती हैं तथा कुछ मनोवहा अथवा चित्तवहा नाड़ियाँ कहलाती हैं। प्राणवहा एवं मनोवहा नाड़ियों में इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना योगिजन प्रसिद्ध नाड़ियाँ हैं। सामान्य व्यक्ति का प्राण इड़ा, पिंगला अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र स्वर में ही प्रवहमान रहता है। योगाभ्यासी का ही प्राण सुषुम्ना में गतिशील रहता है। जीव को प्राण और अपान के वश में माना गया है, इन्हीं के वश होकर यह ऊपर-नीचे, दाँये-बांये परवश होकर गमन करता रहता है। जिस प्रकार से हाथ से फैंकी गई गेंद पुनः वापिस लौट आती है उसी प्रकार से जीव प्राण एवं अपान से बँधा हुआ है। अथवा रस्सी से बँधा हुआ पक्षी जिस प्रकार से सीमित क्षेत्र में ही उड़ान भर सकता है उसी तरह से प्राणापान से बँधा हुआ जीव रस्सी से बद्ध पक्षी की तरह ही है।

हमारे नाभि मण्डल में समस्त शरीर में प्रसृत नाड़ियों का पुञ्ज है इसे नाड़ी चक्र कहा जाता है। इसी नाड़ी चक्र में जीव भ्रमण करता रहता है जिस प्रकार से मकड़ी अपने जाल के ऊपर घूमती रहती है। इसी कारण से जीव को प्राणाधिरूढ़ कहा जाता है। इसकी अपनी स्वतन्त्र गति नहीं है। अज्ञान एवं कर्म संस्कार ही इसके बन्ध के कारण हैं। इसीसे जीव नाना विकारों से युक्त मोह एवं भ्रमजाल में फँसा रहा करता है। योगी का लक्ष्य जीव को इस अज्ञान की दशा से हटाकर उसे ज्ञान क्षेत्र एवम् मुक्ति पथ की ओर ले जाना है। इसके लिये ही वे प्राणवायु को पश्चिम पथ (सुषुम्ना) से ले जाकर सहस्रार में पहुँचाकर निर्विकल्प में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। योगियों का मानना है कि जब तक प्राण सुषुम्ना में प्रवेश नहीं पा जाता तब तक वह ज्ञान एवं मुक्ति से दूर ही रहता है। सुषुम्ना को श्रुतियों में शून्य पदवी महापथ, निर्वाण पथ, मोक्ष पथ, ब्रह्मरन्ध्र आदि नामों से पुकारा गया है। इसी निर्वाण पथ के मूल द्वार पर ही महाशक्ति कुण्डलिनी प्रसुप्तावस्था में द्वार को अवरुद्ध कर सोई रहती है। यही स्थान मूलाधार चक्र के नाम से जाना जाता है।

इसी महाशक्ति को जगाने के लिये योगी लोग प्राणायाम, बन्ध, मुद्राओं का

निरन्तर अभ्यास करते रहते हैं। तदनन्तर सिद्ध सद्गुरु की कृपा से कुण्डलिनी सुषुम्ना द्वार को छोड़ देती है। योगी मोक्ष द्वार को पा जाता है। इसी मार्ग में ज्ञान एवं प्रकाश का स्रोत है, योगी अपने प्राण को इसी पथ से ले जाकर अपना लक्ष्य साधते हैं। इसे प्राणोपासना की साधना भी कहते हैं। यह श्रुति सम्मत महापथ है, ऋषियों ने इसी मार्ग का अवलम्ब लेकर आर्षतत्व को प्राप्त किया। आर्ष युग से लेकर मध्य युग तक के सन्तों की साधना साहित्य के अवलोकन से यह बात सुनिश्चित होती है कि सभी ने इस प्राणोपासना की साधना को ही महत्त्व दिया एवं अपनाया है। इसे अजपा साधना के नाम से भी कहा जाता है। इस साधना के करते करते प्राण सद्गुरु संकल्प से स्वयं ही पश्चिम मार्ग वाही बन जाता है। अजपा साधना प्राण अपान की साधना भी है। योग वाशिष्ठ आदि ग्रन्थों में प्राण अपान के सम्यक्ज्ञान से मुक्ति प्राप्ति का संकेत मिलता है। चित्त रूपी वृक्ष के दो बीज प्राणपरिस्पन्दन तथा दृढ़वासना माने गये हैं। प्राणों के परिस्पन्दन का नाड़ियों के साथ संस्पर्श हो जाने पर चित्त को संवेदना मिल जाती है जिससे वृत्ति रूपी तरंग उठते रहते हैं। 'प्राणों' का संरोध ही चित्तस्थैर्य का मुख्य उपाय है। प्राणाधिरूढ़ जीव की मुक्ति के लिये ही सिद्धयोगियों ने साधकों को अजपा साधना का उपदेश किया है। इस साधना का मुख्य उद्देश्य प्राण अपान को समायुक्त कर सुषुम्ना में प्रवेश पाना है। यह साधना हर क्षण हर स्थल पर एवं हर स्थिति में सम्पादित की जाने वाली साधना है। यह साधना गुरुगम्य साधना है। महात्मा चरणदास ने सतत अविच्छिन्न श्वास की ही हंस की संज्ञा दी है। अपने अभीष्ट मत की अभिव्यक्ति करते हुए वे कहते हैं—

आसा पद्म लगाय के एक ही वरतमित साध।
बैठे-लेटे डोलते श्वासा ही आराध॥

इस साधना के करते-करते नादाभिव्यक्ति आदि का संकेत योग शास्त्रों में उपलब्ध है। प्राणाधिरूढ़ जीव ब्रह्म मार्ग से होता हुआ सहस्रार में जब परम शिव से मिल जाता है तो वह अमर पद पा जाता है। जिसे योग में निर्विकल्प समाधि के नाम से जानते है। इससे पूर्व जीव को योग की भाषा में 'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' तथा वेदान्त की भाषा में 'वृत्त्यारूढ़ चैतन्य' के नाम से पुकारा जाता है जो नाना प्रकार के क्लेशों से क्लेशित रहता है। योग का परम लक्ष्य जीव को अपना शुद्ध स्वरूप कैवल्य भाव में प्रतिष्ठित करना है।

क्रियायोग की साधना एवम् समाधि

श्री पूर्णचन्द्र पन्त

"योग" शब्द संस्कृत के 'युजिर' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—मिलना, अर्थात् जीव का परमात्मा से मिलन। योग की दूसरी व्युत्पत्ति "युज्" धातु से होती है, जिसका अर्थ है समाधि। मोटे शब्दों में योग का अर्थ है—स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलना अर्थात् मन को बाहरी संसार से हटाकर अन्तर्जगत में प्रवेश कराना तथा प्रकृति के सभी रहस्यों को जान लेना एवम् अपने अविनाशी आत्मस्वरूप को तत्वतः जान लेना और उसमें स्थित हो जाना ही योग है।

मन की एकाग्रता से योग आरम्भ होता है, मन अणु के समान सूक्ष्म होता हुआ भी अत्यन्त शक्तिशाली होता है, किन्तु संकल्प विकल्पों की तरङ्गों से वह सदा चञ्चल बना रहता है। प्रतिक्षण संसार का चिन्तन करते रहने से उसकी शक्तियाँ बिखरी रहती हैं। यदि योग-साधना द्वारा उसके बहिर्मुखी प्रवाह को रोककर उसे अन्तर्मुखी बना दिया जाये तो उसके अन्दर ऐसी विलक्षण शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं कि योगी अपने संकल्प से सृष्टि की रचना तक कर सकता है। वश में किया गया मन ही मनुष्य के मोक्ष का साधन है। योगशास्त्र में कहा गया है—

मन एव मनुष्याणां
कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं
मुक्त्यै निर्विषयंस्मृतम्॥

अर्थात्, मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। यदि वह सांसारिक विषय-भोगों के चिन्तन में लगा रहे तो जीव को बन्धन में डाले रखता है और यदि वह संसार के चिन्तन से हट जाये तो जीव को मोक्ष दिला देता है।

यद्यपि शास्त्रों में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग एवं अष्टाङ्गयोग आदि नामों से योग का वर्णन किया गया है। किन्तु इन्हें योग के भेद नहीं कहा जा सकता, ये सब योग के अन्तर्विभाग हैं और अष्टाङ्ग योग के अङ्ग हैं। उपनिषदों में योग-साधना की दो विधियाँ बताई गई हैं—हठयोग और राजयोग।

प्राणायाम आदि क्रियाओं द्वारा प्राण-वायु को वश में करना, उसकी चञ्चलता को मिटाकर उसे जहाँ चाहे वहीं स्थिर कर लेना हठयोग कहलाता है। इसी प्रकार अष्टाङ्ग-योग के अभ्यास के द्वारा मन की चञ्चलता और मलिनता को मिटाकर उसे पूरी तरह वश में कर लेना राजयोग कहलाता है। मन और प्राणवायु का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के वश में हो जाने से दोनों ही वश में हो जाते हैं। जहाँ मन एकाग्र होता है प्राणों की गति भी वहीं रुक जाती है। इसी प्रकार जहाँ प्राण रुकते हैं मन भी वहीं स्थिर हो जाता है। मन और प्राणों को इच्छानुसार स्थिर कर लेना ही सबम-सिद्धि है। इसे ही समाधि कहा जाता है।

योगदर्शन में समाधि प्राप्ति के कई साधन बताये गये हैं, उनमें सबसे सरल उपाय है—क्रियायोग की साधना।

तपः स्वाध्यायेश्वर
प्रणिधानानि क्रियायोगः।

अर्थात्, तप करना, स्वाध्याय करना और अपने गुरुदेव अथवा परम गुरु परमेश्वर की शरण में चले जाना क्रियायोग कहलाता है।

योगदर्शन में क्रियायोग का फल इस सूत्र में बताया गया है—

क्लेशतनूकरणार्थः समाधि भावनार्थश्च।

अर्थात्, अविद्यादि क्लेश जिनके कारण जीव अपने अविनाशी आत्मस्वरूप को भूलकर अपने को शरीर मान बैठा है और जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है—क्रियायोग की साधना से वे सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं और समाधि सिद्ध हो जाती है। वे क्लेश कौन से हैं जिनके कारण जीव अपने आत्म-स्वरूप से विमुख होकर संसार चक्र में भटक रहा है, यह स्पष्ट करते हुए योगाचार्य पतञ्जलि देव जी महाराज आगे कहते हैं—

अविद्यास्मिता, राग-
द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।

उन क्लेशों के नाम हैं—

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश। इनमें अविद्या ही मुख्य है। अविद्या के कारण ही अन्य चारों क्लेश उत्पन्न होते हैं और अविद्या के नष्ट हो जाने पर वे भी स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

अगले सूत्र में अविद्या का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु
नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या।

हमारा शरीर, हमारे स्त्री-पुत्र आदि के शरीर तथा संसार के समस्त भोग नाशवान होने से अनित्य हैं किन्तु मनुष्य अज्ञानवश उन्हें नित्य समझता है, जो अनित्य में नित्य की प्रतीति रूप अविद्या है। हमारा शरीर तथा हमारे स्त्री-पुत्र आदि के शरीर हड्डी, मांस आदि अपवित्र पदार्थों से बने हुए तथा मल-मूत्र आदि से भरे होने के कारण अपवित्र हैं किन्तु हम मोहवश उन्हें पवित्र समझते हैं, यह अपवित्र में पवित्र की अनुभूति रूप अविद्या है। संसार के समस्त भोग क्षणिक सुख देने वाले और परिणाम में महान दुःख-दायी हैं किन्तु मनुष्य उन्हें स्थायी सुख का साधन समझकर उनकी प्राप्ति, संग्रह और भोगों में बड़े-बड़े दुःखों को झेलता हुआ अपने बहुमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है। यह दुःख में सुख की प्रतीति रूप अविद्या है। हमारा शरीर जड़ है, नाशवान है और विकारी है, जबकि आत्मा इससे सर्वथा असंग, अविनाशी, चेतन और विशुद्ध सत्ता है किन्तु हम शरीर को ही आत्मा समझते हैं, यह अनात्मा में आत्मा की प्रतीति रूप अविद्या है।

क्रियायोग की साधना से पूर्वोक्त अविद्या आदि सभी क्लेश दूर हो जाते हैं और साधक का अन्तःकरण भलीभाँति शुद्ध हो जाने से उसे अपने आत्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। आत्मा को जान लेने से उसे समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाता है और वह हर प्रकार से सुखी हो जाता है। आत्मज्ञान ही कैवल्य मोक्ष का एक मात्र साधन है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है—

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं
तेजोमयं भ्राजते तस्सुधान्तम् ।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही,
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥

जिस प्रकार कोई तेजोमय रत्न मिट्टी से ढका रहने के कारण छिपा रहता है, उसके वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं होता। परन्तु वही जब धोकर साफ कर दिया जाता है तब वह चमकने लगता है। इसी प्रकार जीवात्मा का असली स्वरूप अत्यन्त निर्मल होने पर भी जन्म-मरणान्तर के अविद्याजनित संस्कारों से मलिन होने के कारण छिपा रहता है। जब योगसाधना द्वारा उपरोक्त मल धुल जाने से योगी का अन्तःकरण बिल्कुल निर्मल हो जाता है तब उसे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाने से वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर सर्वथा कृतकृत्य हो जाता है। उसके लिये जानने योग्य, करने योग्य और पाने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहता।

क्रियायोग का पहला अंग है—तप। गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, अपमान आदि को तथा अपने धर्म के पालन के लिये हर प्रकार के कष्टों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना 'तप' कहलाता है। गीता में तीन प्रकार के तप बताये गये हैं।

(१) शारीरिक तप (२) मानसिक तप, (३) वाणी का तप।

शरीर का तप

देव, द्विज, गुरु, प्राज्ञ
पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं
तप उच्यते ॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और महापुरुषों का सम्मान करना हर प्रकार से पवित्र रहना, सबके साथ सरल व्यवहार करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और मन, वाणी एवं कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना तथा किसी भी प्राणी की हत्या न करना शरीर सम्बन्धी तप कहलाता है।

वाणी का तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं
प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव
वाङ्मयं तप उच्यते ॥

दूसरों के मन को न दुःखाने वाली, सत्य, प्रिय और हितकारी वाणी बोलना तथा वेद, उपनिषद् गीता, भागवत पुराण आदि पवित्र ग्रन्थों का पाठ (पारायण व मनन) करना और मन्त्र जाप करना वाणी का तप कहलाता है।

मानसिक तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं
मौनमात्मविनिग्रहः ।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो
मानसमुच्यते ॥

मन की प्रसन्नता और शान्ति, मौन रहना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना तथा अन्तःकरण का पूरी तरह पवित्र रहना यह सब मानस तप कहलाता है।

अष्टाङ्ग योग के पहले और दूसरे अङ्ग में जिन १० यम-नियमों का विधान किया गया है वे सभी इन तीन प्रकार के तपों में आ जाते हैं।

जप करने का क्या लाभ है? इस सम्बन्ध में योगशास्त्र बताता है—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।

तप के प्रभाव से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं और अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। जिससे साधक को दो प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—कायिक सिद्धि और ऐन्द्रिय सिद्धि। कायिक सिद्धि के फलस्वरूप उसका शरीर नीरोग, रूपवान और बलवान बन जाता है। ऐन्द्रिय सिद्धि प्राप्त हो जाने से उसे लोक-लोकान्तरों के दर्शन होने आरम्भ हो जाते हैं। वह हजारों मील दूर तक देख सकता है, हजारों मील दूर की बातों को सुन सकता है। इसी प्रकार दूर-दूर की गन्ध को और स्वाद को (दिव्य रसों को) वह एक स्थान पर बैठे-बैठे ही ग्रहण कर सकता है।

क्रियायोग का दूसरा अङ्ग है—स्वाध्याय।

वेदों में बताये हुए परमेश्वर के ओंकार आदि पवित्र नामों का अथवा अपने गुरुमन्त्र का श्रद्धापूर्वक जप करना तथा पवित्र धर्म-ग्रन्थों का मनन करना स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्याय का फल इस प्रकार बताया गया है—

देवाः सिद्धाः ऋषयश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति ।

अर्थात्, स्वाध्यायशील व्यक्ति को देवता, सिद्ध और ऋषि-मुनि दर्शन देते हैं और उसका हर प्रकार से कल्याण करते हैं।

मोक्षदाता धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने से साधना में श्रद्धा बढ़ती है और अन्तःकरण पवित्र होता है। इसी प्रकार मन्त्रों का जप करने से अन्तःकरण पवित्र होता है, मन की चञ्चलता दूर होती है और उसकी एकाग्रता बढ़ जाती है। मन्त्र में तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैं—मन्त्र की अपनी शक्ति, मन्त्रदाता गुरुदेव की शक्ति और उन सिद्धों की शक्ति जो उस मन्त्र को जपकर सिद्ध बने हैं।

मन्त्रजप योगसिद्धि का एक सरल और उत्कृष्ट साधन है। इस सम्बन्ध में योग-विज्ञान का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त मैं पाठकों के समक्ष रख रहा हूँ। वह इस प्रकार है—

आत्मतत्त्व अणु के समान अत्यन्त सूक्ष्म है। सूक्ष्म को सूक्ष्म द्वारा ही जाना जा सकता है। मन्त्र उस सर्वव्यापी, समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी परम गुरु परमेश्वर का सूक्ष्म शरीर होता है। श्रद्धापूर्वक, लम्बे समय तक तथा नियमानुवर्तिता से मन्त्र का जप करते रहने से जप में सूक्ष्मता आती रहती है। मौखिक जप उपांशु जप में तथा उपांशु जप मानसिक जप में बदल जाता है। फिर वही जप बुद्धि में प्रवेश करके अजपा जप में बदल जाता है। अर्थात्, बिना प्रयास किये ही अन्दर ही अन्दर स्वतः जप होता रहता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों हम सूक्ष्मता की ओर बढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों मन में एका-ग्रता बढ़ती जायेगी और हमारा मन अपने आराध्यदेव में लय होने लगेगा।

इसका वैज्ञानिक आधार यह है—मन्त्रों में शब्द होते हैं। "शब्द" आकाश तत्त्व का गुण और सूक्ष्म तन्मात्रा है। आकाश पञ्च

महाभूतों में सबसे शक्तिशाली, सबसे सूक्ष्म और समस्त ब्रह्माण्डों में व्यापक है। शब्द आकाश में सदा विद्यमान रहता है, कभी भी नष्ट नहीं होता। शब्दमय होने से मन्त्र ईथर की तरङ्गों के रूप में महाकाश में मिलकर साधकों का सन्देश उसके गुरुदेव तक पहुंचा देता है, जिससे साधक का अपने गुरुदेव के साथ निरन्तर सम्बन्ध जुड़ा रहता है और उसका हर प्रकार से कल्याण होता रहता है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपने गुरुदेव में, अपने मन्त्र में और अपनी साधना में हमारी जितनी अधिक श्रद्धा होगी उतनी ही जल्दी सफलता मिलेगी। श्रद्धा बढ़ाने का उत्कृष्ट साधन है—सत्संग और संकीर्तन।

क्रियायोग का तीसरा अङ्ग है—ईश्वर प्रणिधान। इसे ही भक्तियोग कहा जाता है।

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है—ईश्वर को आत्म-समर्पण करना। अर्थात् सर्वतोभावेन ईश्वर की शरण में चले जाना।

योगदर्शन में ईश्वर प्रणिधान का फल बताया गया है—

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।

अर्थात्, ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है।

ईश्वर प्रणिधान कब और कैसे होता है यह स्पष्ट करने के लिए योगाचार्य प्रातः-स्मरणीय पतञ्जलिदेवजी महाराज ने तीन सूत्रों की रचना की है, जो इस प्रकार हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः

ईश्वर का वाचक (नाम) ओंकार है। इसलिए

तज्जपस्तदर्थ भावनम्

ईश्वर के वाचक ओंकार का जाप करना चाहिए और उसके साथ-साथ उस सर्व-व्यापी परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

तीसरा सूत्र है—

ततःप्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तराया-भावश्च।

ऐसा करने से योगाभ्यास के सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और अन्तरात्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार निर्बीज समाधि सिद्ध हो जाती है।

प्रणिधान का अर्थ है—अनन्य भक्ति, सम्पूर्ण समर्पण। गीता में भक्तियोग के अन्तर्गत इस विषय को सविस्तार समझाया गया है। शरणागत भक्त की क्या स्थिति होती है और ईश्वर उनका किस प्रकार कल्याण करते हैं, यह स्पष्ट करते हुए गीता के दसवें अध्याय में अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण ने कहा है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा
बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं
तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां
भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं
येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता अध्याय १० श्लोक ९-१०)

निरन्तर मुझ परमेश्वर में मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण किये हुए जो भक्तजन मेरे दिव्य गुणों को, लीला-कथाओं को और ऐश्वर्य को आपस में एक-

दूसरे को सुनाते हुए मेरी चर्चा द्वारा निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव का ही सदैव चिन्तन करते रहते हैं उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजन करने करने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त हो जाते हैं।

जो साधक अपने आराध्य (इष्टदेव) को सर्वतोभावेन आत्म समर्पण कर देता है वे भक्तवत्सल प्रभु उसका हर प्रकार से उद्धार कर देते हैं। गीता के बारहवें अध्याय में प्राणिमात्र के परम सुहृद योगेश्वर श्रीकृष्ण यह घोषणा कर रहे हैं—

ये तु सर्वाणि कर्माणि
मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां
ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता
मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ
मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता अध्याय १२ श्लोक ६-७)

अर्थात् मुझ परमेश्वर पर निर्भर रहने वाले जो भक्तजन अपने सभी शुभाशुभ कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्य भक्तियोग के द्वारा मेरा भजन और ध्यान करते हैं, मुझमें चित्त लगाये हुए उन प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार-सागर से उद्धार कर देता हूँ। गीता के अध्याय १२/८ में :—

मय्येव मन आधत्स्व
मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव
अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

भगवान कहते हैं—इसलिये तू मुझ (परमेश्वर) में ही अपना मन लगा और मुझ में ही बुद्धि लगाये रख। ऐसा करने के उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा। इसमें बिल्कुल सन्देह मत कर।

परमेश्वर का हर समय चिन्तन करते रहने से मन और बुद्धि स्वतः ही उसमें लग जाते हैं। ईश्वर का अनन्य चिन्तन (ध्यान एवम् मन्त्र जप) के फलस्वरूप साधक सकल योग-सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। योग-शिखोपनिषद में भगवान सदाशिव का कथन है—

सर्वज्ञत्वं परेशत्वं सर्व सम्पूर्ण शक्तिता।
अनन्तशक्तिमत्वं च मदनुस्मरणाद्भवेत्॥

ध्यानाभ्यासी योगी सर्वज्ञ (सब कुछ जानने की सामर्थ्य वाला) बन जाता है, संसार के सब प्राणी उसके वश में हो जाते हैं और उसमें सब पर शासन करने की योग्यता आ जाती है तथा वह सब प्रकार से शक्ति सम्पन्न बन जाता है। मुझ परमेश्वर का सतत चिन्तन करते रहने के फलस्वरूप शरणागत भक्तों को सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं।

इस प्रकार क्रियायोग की साधना ही समाधि सिद्धि का आधार है। इस साधना पद्धति में जप के प्रभाव से हठयोग, स्वाध्याय (मन्त्रजप) के प्रभाव से मन्त्रयोग, अपने आराध्य (इष्टदेव) में अनन्य भक्तिभाव के कारण लयता हो जाने से लययोग और राजयोग स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। क्रियायोग की साधना में मन्त्रजप की प्रधानता के कारण साधक को सिद्धों के दर्शन होते हैं और सिद्ध गुरु की संगति प्राप्त होती है। गुरुदेव अन्दर ही अन्दर उसका मार्गदर्शन करते रहते हैं और पुण्यवृद्धि हो जाने पर तथा पुण्यों का भोगकाल उदय हो जाने पर उस पर अपनी शक्ति का संचार करके उसे सिद्धयोगी बना देते हैं। जिससे वह संसार चक्र से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। ★

गुरुदेव ! महात्मा के अनुभव

—॥ श्री केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी)

प्रसंग उस समय का है, जब हमारे आपके एवम् प्राणीमात्र के भाग्य विधाता, अकारण दयालु श्री सद्गुरुदेव भगवान इस धराधाम पर सशरीर विराजमान थे। यह घटनाक्रम श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के योग माघ मेला शिविर "श्री सिद्ध गुफा मवाई" से सम्बन्धित है और जहाँ तक हमें स्मरण है, इलाहाबाद माघ मेला सन् उन्नीस सौ छियासी-सत्तासी का है। हमारे आदरणीय गुरुभाई एवम् श्री गुरुदेव भगवान के कृपापात्र शिष्य श्री रामकुमार पाण्डेय जी बलिया जिले से अपनी पत्नी के उपचारार्थ, श्री चरणों में वहाँ आये थे, यह घटना उन्हीं से सम्बन्धित है एवम् उन्हीं के शब्दों में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। श्री सिद्धयोग के पाठक समुदाय से नम्रनिवेदन है कि लेख की त्रुटियों को, अल्पज्ञ समझकर, क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

श्री पाण्डेय जी की धर्मपत्नी की तबियत उस समय खराब चल रही थी। आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपाओं से उनकी धर्मपत्नी की तबियत काफी हद तक ठीक हो गई थी, परन्तु बीच-बीच में यदा-कदा ज्यादा खराब हो जाती थी। अबकी बार अपनी धर्मपत्नी की तबियत को बिल्कुल ठीक करने के लिये गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करूँगा एवम् उनके स्वस्थ होने पर ही श्री गुरुदेव भगवान के सान्निध्य से दूर हटूँगा, ऐसा दृढ़ निश्चय कर, वे श्री चरणों में पहुँचे थे। श्री पाण्डेय जी ने सपत्नीक श्री चरणों में पहुँच कर प्रणाम किया एवम् अपनी बात श्री चरणों में प्रार्थना की। इसके पश्चात् जो हुआ, वह पाण्डेय जी के शब्दों में इस प्रकार है—

आराध्यदेव ने हम लोगों को बड़े ही प्यार से उठाया, आह्लाद भरे शब्दों में अनेक आशीर्वाद दिये एवं हमारे द्वारा निवेदित प्रार्थना के विषय में श्री प्रभु जी ने कहा कि लल्ला ! तुम नियम से अपना जाप किया करो, यदा-कदा आश्रम जाकर आश्रम की सेवा कर लिया करो, सब ठीक हो जायेगा। (यद्यपि यह जोड़ा श्री प्रभुजी का बड़ा ही कृपा पात्र है) परन्तु जैसा कि आदमी का स्वभाव है, प्राणीमात्र विपत्ति के समय बहुधा धैर्य खो देता है, बहुत विरले प्राणी ही विषम परिस्थियों में अपना समय, धैर्य के साथ सकुशल निकाल पाते हैं। यह दम्पति भी अपना धैर्य खो बैठा एवम् उसने दूसरे दिन फिर वही प्रार्थना की एवम् श्री मुख से भी दुबारा वही आश्वासन दिया गया।

मेरी पत्नी को प्रेत बाधा है, वह पागल है, दिन-रात हमको, परिवार को, गाँव को, सबको परेशान कर रही है एवम् हमारे आराध्यदेव हमारी परेशानियों को इतने हल्के प्रकार से ले रहे हैं। जाप एवम् ध्यान तो मैं नियमित करता ही हूँ परन्तु हमारी पत्नी प्रेत बाधा से बिल्कुल मुक्त क्यों नहीं

ही जाती। जाप-ध्यान भी मैं अच्छी प्रकार से करता हूँ। परन्तु क्यों वह कल्याणकारी नहीं हो रहा है। इसी विषय पर मैं बार-बार विचार कर रहा था, परन्तु कुछ समझ में नहीं आ रहा था। दोपहर का भोजन करके हम दोनों विश्राम कर रहे थे। मैं इन्हीं विचारों में मग्न था एवं हमें नींद नहीं आ रही थी, करीब आधा घण्टे बाद जब मैंने अपनी पत्नी की तरफ देखा तो पाया कि वह गम्भीर नींद में सो गयी है। यद्यपि आराध्यदेव का हमारे लिये यही आदेश था कि तुम अकेले मेले में कहीं नहीं जाओगे, यदि जाना बहुत जरूरी हो तो अपनी पत्नी को भी साथ लेकर जाओ। मैंने देखा कि आराध्यदेव भी विश्राम कर रहे हैं एवं मेरी पत्नी भी गहरी नींद में है, तब मेरे मन में एक विचार आया। आखिर मैं ठहरा सांसारिक आदमी, मैंने सोचा इतने बड़े मेले में इतने सिद्ध महात्मा आये हैं, हो सकता है, मेरा कष्ट निवारण करने में कोई महात्मा सक्षम हो। यह विचार जब हमारे मन में प्रबल हो गया, तो अपने बगल के कैम्प में उपस्थित अपने गुरुभाई-बहनों से मैंने प्रार्थना की कि हमारी पत्नी की तबियत खराब है, वह पागल है, यह बात तो आप लोग जानते ही हैं। उन लोगों ने कहा कि हाँ, भाई जी कहिये, क्या करना है? मैंने उन लोगों से निवेदन किया कि इस समय वह गहरी नींद में सो रही है और मैं एक आवश्यक कार्य से बाहर जा रहा हूँ। वैसे मैं मेले में ही जा रहा हूँ एवं जल्दी आने का प्रयास करूँगा, परन्तु यदि देर हो जाय एवं वह नींद खुलने के बाद इधर-उधर भागने लगें तो इसे रोक लीजियेगा। उन लोगों ने मुझे आश्वासन दिया कि आप निश्चिन्त जाइये, हम लोग उसे कैम्प से बाहर नहीं जाने देंगे।

अपने गुरुभाई-बहनों पर अपनी धर्मपत्नी का दायित्व छोड़कर मैं अपने कैम्प से बाहर निकला। बाहर आकर मैंने दूसरे कैम्पों एवं धार्मिक प्रचार-स्थलों पर जो माघ मेला इलाहाबाद में विराजमान थे, अपनी दुनियाँ वाली आँखों से ऐसे सन्त, महात्मा एवं योगी पुरुषों की खोज करना आरम्भ किया जो हमें कष्ट से छुटकारा दिला सकें। मैंने करीब-करीब पूरा धर्म-क्षेत्र खोज की नियत से देखा परन्तु कहीं के भी उत्तर से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। इसी खोजबीन के तारतम्य में, मैं एक कैम्प पर पहुँचा। कैम्प के दरवाजे पर फूस का एक पर्दा रखा गया था। उसके दरवाजे के सामने, फूस के पर्दे के बाद पचासों व्यक्ति लाइन में अनुशासित ढङ्ग से खड़े थे। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि उस फूस के फाटक को हटाकर एक व्यक्ति कैम्प से बाहर आया एवं फिर रास्ता पकड़ कर चला गया। उसके तुरन्त बाद फूस के फाटक के पास खड़ा व्यक्ति फाटक हटाकर अन्दर चला गया। कुछ मिनट के पश्चात्, भीतर गया व्यक्ति फाटक हटाकर बाहर आ गया और फाटक को लगाकर चलता बना। इसके पश्चात् उसके बाद वाला व्यक्ति फिर फाटक हटाकर भीतर गया। इस क्रिया को देखने के पश्चात् मैंने सोचा कि इस कैम्प के अन्दर जरूर कोई सिद्ध महात्मा विराजमान हैं जो हमारा कार्य कर देंगे। यह जानने की नीयत से देखा कि इस महात्मा का नाम क्या है तो कैम्प के ऊपर लिखा था—"योगिराज देवरहवा बाबा माघ मेला शिविर।" मैं भी जिज्ञासुओं की लाइन में सबसे पीछे खड़ा हो गया। करीब एक घण्टे पश्चात् हमारा भी नम्बर आ गया और मैं भी फूस का फाटक हटाकर भीतर प्रवेश कर गया। भीतर प्रवेश करके मैंने जो दृश्य

देखा, वह इस प्रकार था—

कैम्प के भीतर जब मैंने प्रवेश किया तो देखा कि उसके अन्दर एक चौकी पर आसन लगा है, उस आसन पर श्याम वर्ण के महात्मा जिनके चेहरे पर चेचक के निशान हैं, कद औसत दर्जे से थोड़ा छोटा है एवं जिनकी अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है, पद्मासन पर विराजमान हैं। महात्मा का ललाट तेज से चमक रहा था। महात्माजी ने लाल रंग की लंगोटी पहन रखी थी एवं आँखों पर लाल रंग की पट्टी बाँध रखी थी। यह लाल रंग की पट्टी, लाल कपड़े की कई सतहों (पर्तें) को, एक करके बनायी गयी थी। उस पट्टी से किसी वस्तु को देखना असम्भव ही था। कमरे (कैम्प) में प्रवेश के पश्चात् मैंने दूर से ही निवेदन किया "महात्मा जी, प्रणाम।" महात्मा जी का उत्तर था— "आशीर्वाद।" (यह महात्मा एक साधक थे, जो योगिराज, देवरहवा बाबा के संरक्षण में रहकर अपनी साधना कर रहे थे) आशीर्वाद देने के बाद महात्मा जी ने प्रश्न किया कि किस प्रयोजन से यहाँ आये हो? मैंने निवेदन किया कि महात्मा जी! मैं एक दुखिया हूँ एवं इस पुण्य क्षेत्र माघ मेला में घूम-घूमकर इसे दूर करने के लिये महात्मा लोगों का दर्शन कर रहा हूँ एवं उन्हें प्रणाम कर रहा हूँ। मेरी बातों को महात्मा जी ने बड़े ही प्रेम से सुना, एवं मेरी बातें समाप्त होते ही स्वयं बोलना आरम्भ किया।

क्यों जी? क्या तुम योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सनातं आश्रम के माघमेला कैम्प से आये हो? योग शिरोमणि, सिद्ध योगिराज अनन्त श्री जी के शिष्य हो? (महात्मा ने आदरवश आराध्यदेव श्री का नाम अपने मुख से नहीं कहा) महात्मा ने हाथ जोड़कर अपनी गर्दन झुकाकर उन्हें प्रणाम किया, बिना कुछ उच्चारण किये। महात्मा ने फिर मुझसे कहना आरम्भ किया। अरे भाई, तुम्हारा कार्य वहीं से हो रहा है एवं वहीं से होगा। तुम्हारी पत्नी जो प्रेत बाधा से पागल हुई है, इस समय बिल्कुल ठीक है और उन्हीं दयानिधान के साथ मेला शिविर में है। तुम्हारी धर्मपत्नी, तुम्हारे गुरुदेव भगवान की अहेतुकी कृपा से बिल्कुल ठीक हो जायेगी। हाँ एक बात ध्यान से सुनो, वह वैसे ठीक नहीं होगी, जैसे इससे पूर्व तुम अन्य स्थानों (प्रेतबाधा हटाने वाले ओझाओं, कर्मकाण्डियों एवं बाबा लोगों) से ठीक कराते आये हो। मन एकाग्र कर उसी स्थान को पकड़े रहा करो। उनके चरण-कमल, उन्हीं को स्पर्श करने को मिलते हैं, जिनके भाग्य बड़े ही ऊँचे हैं। यह बात जो मैं बता रहा हूँ, प्रत्येक साधनारत व्यक्ति जानता है परन्तु बिना प्रयोजन के कोई किसी को क्यों बतलाये?

दूसरी बात यह कि पिछली भाद्रपद अष्टमी (कृष्ण जन्माष्टमी) से अगली भाद्रपद अष्टमी तक एक वर्ष का हमारा अनुष्ठान चल रहा है, इस समय हम किसी भी कार्य के लिये न तो संकल्प कर सकते हैं और न ही उसके लिये आशीर्वाद दे सकते हैं। रही इसके बाद की बात, तो तुम्हारा कार्य तो वह लीलाधारी उसके बहुत पहले ही पूर्ण कर देंगे। अब तुम सीधे अपने गुरुदेव के कैम्प में चले जाओ एवं उनके चरण-कमलों का ध्यान करो। मुझे काफी देर हो गई थी, अतः दूसरे जिज्ञासु ने उस महात्मा के कैम्प में प्रवेश किया और मैंने बाहर निकलकर सीधे आराध्यदेव के कैम्प का रास्ता पकड़ा।

रास्ते में अपने आराध्यदेव जी के प्रति उस महात्मा द्वारा सम्बोधित शब्दों एवं वाक्यों पर मनन करता रहा। आखिर इतने सामर्थ्यवान होकर भी हमारे गुरुदेवश्री कितने सरल एवं सहज हैं। कोई बन्धन नहीं, मिलने के लिए तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, इतने उदार एवं अहैतुकी जिसकी कोई तुलना नहीं। सन्त महात्मा तो बहुत हैं परन्तु अपने गुरुदेव के समान नहीं। यही सोचते-सोचते मैं अपने गुरुदेव के बंगले पर आ गया। आराध्यदेव जी सोकर उठ चुके थे एवं अपने आसन पर विराजमान थे। मैंने भी जाकर श्री चरणों में प्रणाम किया एवं उसके पश्चात् सामने बैठे गुरुभाई-बहनों की मण्डली में बैठ गया।

यह भारतवर्ष पवित्र भूमि है एवं यहाँ समय-समय पर ईश्वर एवम् योगिजनों का अवतार होता ही रहा है। जब जब धर्म संकट में पड़ा है, साधुजन सताये गये हैं, तब-तब उनके कष्ट निवारणार्थ किसी न किसी को अवतार लेना पड़ा है। हमारे श्री गुरुदेव जी महाराज भी उन्हीं अवतारी पुरुषों में से एक हैं। उन्हें, उनके शिष्य एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं से सम्बन्धित समुदाय सिद्ध पुरुष, योगिराज, सिद्धयोगी एवं अखण्ड ब्रह्मचारी आदि नामों से सम्बोधित करता है। परन्तु एक बात महत्व की है, वह यह कि अवतारी पुरुष तो बहुत हुये एवम् उनमें सभी आध्यात्मिक शक्तियाँ कमोबेश विद्यमान थीं ही, पर इतने ऊँचे स्तर के सिद्ध योगिराज, इतने निचले स्तर पर उतर कर, जन-कल्याण कार्य किये हैं, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना असम्भव नहीं, तो दुष्कर तो है ही। इस आपबीती घटना को सप्रेम सुनाने वाले अपने गुरुभाई श्री रामकुमार पाण्डेय जी को सप्रेम जयगुरुदेव के साथ लेख को यहीं विश्राम दिया जा रहा है, आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के कमलवत युगल चरणों में बारम्बार साष्टांग प्रणाम के साथ, इस प्रार्थना के साथ कि :—

प्रभु हमको भुलाना ना,
हम तेरे ही बालक हैं।

अपने गुरु और इष्ट पर विश्वास रखिए

★ अपने हृदय की गहराई से ईश्वर के नाम का जप करो और पूरी श्रद्धा से ठाकुर के शरणागत हो जाओ। इस बात की चिन्ता मत करो कि तुम्हारा मन इधर-उधर की चीजों में कैसे उलझा हुआ है। तुम अध्यात्म पथ पर आगे बढ़ रहे हो अथवा नहीं, यह सब गुनने-विचारने में समय मत गँवाओ। अपनी प्रगति का स्वयं मूल्यांकन करना अहंकार है। अपने गुरु और इष्ट की कृपा पर विश्वास रखो।

★ निष्ठापूर्वक जप, तप और कर्म करते रहो। तभी तुम्हें उनकी कृपा प्राप्त होगी। उनकी कृपा पृथ्वी के सभी प्राणियों पर निरन्तर बरस रही है। उसकी याचना करना आवश्यक है। निष्ठापूर्वक ध्यान करते रहो और तब तुम्हें उनकी अनन्त कृपा का ज्ञान हो जायेगा। ईश्वर श्रद्धा, भक्ति और प्रेम चाहते हैं। केवल बाहरी शाब्दिक उच्चारण का स्पर्श भी नहीं कर सकते। —मां शारदा देवी

प्रेरणादायक श्री प्रभु-कृपा प्रसंग

श्री रमाकान्त उपाध्याय उर्फ कन्हैया (वाराणसी)

देवाधिदेव महादेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज एवं अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम योग-योगेश्वर अपने दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के कमलवत चरणों में साष्टांग प्रणाम करने के बाद श्री सिद्ध गुफा के सुयोग्य पाठकों के सामने श्री सद्गुरु देव भगवान के चरणों में घटित एक घटना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। यह घटना हमारे दादरी के गुरुभाई श्री परशुराम सनसनवाल जी से सम्बन्धित है। श्री सिद्ध गुफा के सुयोग्य पाठकों से बारम्बार नम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

सनाई धाम से सम्बन्ध रखने वाले हमारे पुराने गुरुभाई-बहन आदरणीय गुरुभाई श्री अशोक शर्मा से अवश्य ही परिचित होंगे। शर्माजी ने सन् उन्नीस सौ सतहत्तर (१९७७) में श्री प्रभुजी का योग-प्रचार कार्यक्रम दादरी में कराया था। उस समय वे दादरी में ही एक्साइज विभाग में अधिकारी के पद पर कार्यरत थे। कार्यक्रम की समाप्ति के एक साल के अन्दर ही उन्होंने श्री सद्गुरुदेव भगवान की वन्दना एवं स्मरण करते हुए अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया था। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखारविन्द से आदरणीय गुरुभाई श्री शर्मा जी की अनन्य निष्ठ गुरुभक्ति, त्याग तथा अपनी मृत्यु के पूर्व ज्ञान का रहस्य कई बार अपने प्रवचनों में विस्तार से बताया था। उन्हीं के विभाग में उनके साथ कार्य करने वाले उनके मित्र श्री परशुराम सनसनवालजी को जीवन-दान देने की घटना का वर्णन करना इस प्रसंग का मुख्य उद्देश्य है।

भाई श्री सनसनवाल जी ने सन् उन्नीस सौ सतहत्तर के दादरी योग प्रचार कार्यक्रम में आराध्यदेव जी से योग दीक्षा ग्रहण की थी एवं दस दिन तक होने वाले दादरी के इस योग-प्रचार कार्यक्रम में अपना पूरा समय देकर इस सत्संग का लाभ लिया था। सुयोग कुछ ऐसा बना कि दीक्षा लेने के समय से लेकर एवं श्री प्रभुजी के लीलावसान के मध्य तक भाई श्री सनसनवाल जी को श्री सद्गुरुदेव भगवान के स्थूल दर्शन एवं चरण स्पर्श का अवसर कभी भी नहीं मिल सका। आराध्य देव श्री गुरुदेव जी आदि शक्ति माँ दुर्गा की उपासना किया करते थे। संस्कार भुगतान तक कुछ ऐसा बना कि भाई श्री सनसनवाल जी की तबियत ग्यारह नवम्बर उन्नीस सौ अस्सी को खराब होना आरम्भ हुई एवं सात-आठ महीनों में इतनी खराब हो गई कि उनके शरीर के अंगों ने ठीक प्रकार से कार्य करना बन्द कर दिया। उनका

दाहिना हाथ बिल्कुल ही ऊपर नहीं उठता था। रोग की प्रगाढ़ता इतनी बढ़ी कि आठ महीने पूरा होते-होते भाई सनसनवाल जी जीवन से बिल्कुल ही निराश एवं उदास हो गये। एक दिन सायंकाल करीब आठ बजे जब इन्हें असाध्य कष्ट था तो इनके मन में विचार आया कि हे गुरुदेव जब शरीर पर अपना ही नियन्त्रण नहीं है तब इस नश्वर शरीर का छूट जाना अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाना ही ठीक है। मन में यह विचार आते ही इनको अश्रुपात होने लगा और श्री प्रभुजी की तीव्रतम याद आयी। याद आते ही तत्काल उन्होंने देखा कि कमरे में श्री गुरुदेव जी महाराज स्थूल रूप से इनकी तरफ पीठ करके खड़े हैं। इन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से देखा कि श्री गुरुदेव भगवान के पीठ के हिस्से का कुर्ता फटा हुआ है। इन्होंने मन ही मन गुरुदेव भगवान को प्रणाम किया। श्री सद्गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्दु से कहा कि—अरे लल्ला! स्कन्ध चालन किया करो, धीरे-धीरे सब ठीक हो जावेगा। सुयोग्य पाठकों को यह भली प्रकार याद होगा कि पच्चीस जून सन् नब्बे को श्री सद्गुरु देव भगवान ने अपना लीलावसान किया था। यह स्पष्ट स्थूल दर्शन भाई श्री सनसनवाल जी को श्री गुरुदेव जी महाराज के लीलावसान के बाद हुआ था। भाई श्री सनसनवाल जी ने गुरु आज्ञा शिरोधार्य करके उसी दिन से स्कन्ध चालन करना आरम्भ कर दिया। आनन्दकन्द गुरुदेव भगवान की ऐसी कृपा हुई कि उसी दिन से तत्काल लाभ होना आरम्भ हो गया। करीब दो महीने का समय बीतते-बीतते उनका शरीर रोगमुक्त हो गया था परन्तु शरीर अब भी काफी कमजोर एवं कृशकाय था।

इस घटना के करीब एक माह बाद भाई सनसनवाल जी को श्री गुरुदेव भगवान के स्पष्ट स्थूल दर्शन अपने कमरे में ही पुनः हुए। उस समय श्री गुरुदेव भगवान अपने दाढ़ी वाले स्वरूप में थे। पाठकों को याद होगा कि सन् अस्सी से पूर्व श्री गुरुदेव भगवान दाढ़ी एवं बाल नहीं रखते थे। गुरुदेव भगवान को दाढ़ी वाले स्वरूप में देखकर भाई सनसनवाल जी ने पूछा—प्रभुजी दाढ़ी क्यों रख ली। गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! ऐसे ही रख ली। इसके पश्चात् गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! अब तुम सवाई आश्रम चले जाओ। यह सुनने के बाद भाई सनसनवाल जी ने कहा कि—प्रभुजी अभी तो हमारा शरीर काफी कमजोर है, बिस्तर वगैरह लेकर कैसे यात्रा कर सकूंगा। इस पर प्रभुजी ने कहा कि अरे लल्ला! सामान वगैरह कुछ भी लेकर जाने की आवश्यकता नहीं है, तुम तो केवल खाली हाथ चले जाओ, वहां तुम्हें सब सामान मिल जावेगा। इस दिन के दर्शन की सारी घटना इन्होंने अपनी पत्नी को बतलाई। इसी बीच एक और आध्यात्मिक घटना हुई वह यह है कि उन्हें वैष्णव देवी के दर्शन हुए और उन्होंने कहा कि तुम हमारे दर्शन के लिए आओ, मैं तुम्हें स्थूल रूप से दर्शन दूंगी। भाई सनसनवालजी ने कहा कि जब मैं महान कष्ट में था तब तो आपने दर्शन नहीं दिए और अब क्यों वैष्णव देवी के स्थान पर दर्शन देना चाहती है। मैं आपके दर्शन करने वैष्णव देवी के स्थान पर नहीं आऊंगा बल्कि अब श्री सिद्धगुफा के दर्शन करने सवाई धाम आऊंगा। इस पर माँ दुर्गा भी साक्षात् प्रकट हो गयी और उन्होंने कहा कि बेटा वैष्णव देवी के स्थान पर हमारा भी दर्शन कर लेना। इस पर भाईजी ने कहा कि आपके दर्शन की कामना

भी हमारे मन में नहीं है परन्तु यदि श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा होगी तो आपका दर्शन अवश्य करूँगा। इनका यह उत्तर सुनकर वैष्णव देवी अन्तर्धान हो गयी। इसके कुछ दिन बाद श्री गुरुदेव जी ने भाई सनसनवाल जी को स्थूल दर्शन दिये और कहा कि लल्ला! तू वैष्णव देवी चला जा। इस पर भाई सनसनवालजी ने कहा कि—प्रभुजी आपने तो आश्रम आने का आदेश दिया था और अब वैष्णव देवी जाने की बात कह रहे हैं। तब श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! वैष्णव देवी तुम्हें दर्शन देना चाहती हैं तुम उनका दर्शन करके ही सवाई आश्रम आओ। देवी-देवताओं का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। सवाई आश्रम तो तुम्हें आना ही है, पहले वैष्णव देवी के दर्शन का लाभ उठा लो, उसके पश्चात् सवाई आश्रम चले आना। तत्पश्चात् श्री गुरुदेव जी की आज्ञा शिरोधार्य कर भाई सनसनवाल जी वैष्णव देवी गये और उनके दर्शन का लाभ लिया। भाई सनसनवाल जी बता रहे थे कि मैं मुश्किल से मन्दिर की चार-पाँच सीढ़ियाँ चढ़ने के पश्चात् ही थककर पस्त हो गया और रेलिंग पकड़ कर आराम की मुद्रा में खड़ा हो गया। उस समय शरीर में इतनी थकान थी कि खड़ा होना भी मुश्किल हो रहा था। तब इन्होंने मन ही मन माँ वैष्णव देवी से प्रार्थना की कि माँ यदि दर्शन नहीं देना था तो अपने स्थान पर बुलाया ही क्यों था। इसके बाद इन्होंने आँखें बन्द करके ही गुरुदेव भगवान से भी प्रार्थना की कि गुरुदेव यदि मैं देवी के मन्दिर पर नहीं चढ़ सकता था तो आपने देवी के दर्शन का आदेश ही क्यों दिया। भाई जी बतला रहे थे कि इसके बाद आँखें खोलने के बाद मैंने चार पाँच सीढ़ियाँ मुश्किल से चढ़ी लेकिन उसके बाद मैं फिर मन्दिर में ऊपर आराम से चला गया और दर्शन करके लौट भी आया परन्तु रंचमात्र भी थकान या कठिनाई महसूस नहीं हुई।

इसके बाद सन् १९९१ में भाई सनसनवाल जी ने अपनी धर्मपत्नी के साथ सवाई की पहली यात्रा की। वे रात के करीब सवा नौ बजे आश्रम पहुँचे। उस समय श्री विशनचन्द्र जी बैठे हुए आग ताप रहे थे। जब ये आश्रम पहुँचे तो इनके खाने, रहने तथा आराम की व्यवस्था पहले से हो की गयी थी ऐसा इन्होंने महसूस किया। अब तक इनको यह आभास नहीं था कि प्रभुजी अपना शरीर त्याग चुके हैं। प्रभुजी के शरीर त्याग की बात को सुनकर इनके मन को महान कष्ट हुआ परन्तु यह जानकर इन्हें महान आश्चर्य भी हुआ क्योंकि श्री प्रभुजी ने शरीर त्यागने के पश्चात् भाई सनसनवाल जी को स्थूल रूप से दर्शन दिये थे। इस प्रकार हमारे गुरुभाई श्री सनसनवाल जी की प्राण रक्षा तथा उनकी सहायता करके प्रभुजी ने यह बात चरितार्थ कर दी कि—

जो जन शरण है आता।
खाली कभी न जाता॥

इसी के साथ लेख को विराम देते हुए यही कहना चाहता हूँ कि:—

जाको राखे साईयाँ,
मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके,
जो जग बैरी होय॥

★

अध्यात्म नवयुग के सूत्रधार—

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ श्रीमति कविता शर्मा

यदि कहा जाये तो यह युग भक्ति का युग है। उसी भक्ति का जो आज से चार सौ साल पहले प्रारम्भ हुई और फली-फूली। चैतन्यता के और विद्रोह के स्वर भी उठे, लेकिन समाज उसके लिए तैयार नहीं था। वे प्रयास अल्प प्रयास बनकर किताबों में सिमट गये क्योंकि भक्ति में एक सुख है, अपने अहम का पोषण है। बार-बार क्षमा मांगना, बार-बार दीनता प्रकट करना, अपने को गया-गुजरा बताना और पतित कहना, इसमें बड़ा सुख मिलता है क्योंकि प्रकारान्तर से व्यक्ति यही कहता है कि देखो मैं कितना निष्कपट हूँ, मैं कितना सरल हूँ। यह मीठी गुदगुदी यह छद्म आवरण अपने ऊपर डाले वह भूल जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य घन है ही। वह तो पतित था ही नहीं, लेकिन इस मीठी नींद से उस खुमारी से व्यक्ति उबरना नहीं चाहता।

ऐसे में साधना या चेतना जैसे शब्द बहुत बौने हो जाते हैं या अपनी अर्थवत्ता खो बैठते हैं, और यदि साधना का ही महत्व नहीं है तो गुरु का महत्व व्यक्ति स्वीकार भी कैसे कर सकता है क्योंकि साधना में कठिनाइयां हैं, झुलसन है, तपन है, और पीड़ा है। बार-बार लड़खड़ाकर गिर जाने की बात है, बार-बार अपना ही पशुत्व अपने सामने प्रकट होने की बात है, अपने ही अन्दर का मैल निकलकर अपने आपको मथ देने की बात है। जबकि भक्ति में ऐसा नहीं है। भक्ति में तो यह मानकर ही चला जाता है कि मैं बड़ा पवित्र हूँ और पवित्र ना होता तो क्यों प्रभु की प्रार्थना करता। साधना में ऐसे छद्म आवरण नहीं चलते। वहां तो दो टूक स्पष्ट होना पड़ता है, अपने सामने भी, और अपने गुरुदेव के सामने भी। अन्दर का मवाद दबा-दबाकर निकालना पड़ता है जो कि बहुत ही पीड़ादायक प्रक्रिया है।

साधना का अर्थ बस आसन पर बैठकर कुछ मालाएं घुमा लेना ही नहीं है। वह तो साधना का एक प्रकार है। साधना अर्थात् साध लेना। एक-एक क्षण को पकड़ लेना, रात में सोना भी तो उसमें भी आधे जागते हुए सोना, खड़े पहाड़ पर नंगे पांव चलना और स्वयं को भी मटियामेट कर देना। जाहिर है कि इतनी पीड़ा से कोई भी गुजरना नहीं चाहता। और नहीं गुजरना चाहता तो उसीका परिणाम हुआ यह वातावरण, यह सन्देह ऊहापोह और भय। नहीं समझना चाहा तभी यह हुआ कि जीवन में गुरु का कोई अर्थ ही नहीं रहा। नहीं समझना चाहा तभी यह भी हुआ कि नकली और ढोंगी गुरुओं की बाढ़ आ गई, जिनमें साधना को छोड़कर सभी कुछ है। दम्भ है, पाखण्ड है, व्यभिचार है, बड़े-बड़े आश्रम हैं, चमकीले पत्थर हैं, रेशमी गद्दियां हैं, शिष्यों का समूह है, और राजनीतिक सम्पर्क है। आश्चर्य है

कि किस व्यामोह में जी रहा है यह पूरा का पूरा समाज। या शायद ऐसा है कि समाज की मानसिकता भी एक चोर जैसी हो गई। और एक चोर दूसरे चोर को चोर मत कहता है।

ऐसे वातावरण में क्या परिचय दें गुरुदेव का। कैसे व्याख्या करें गुरु तत्व की जो जीवन की सबसे उच्चतम स्थिति है, जो जीवन का श्रेष्ठ स्वरूप है, जो निर्मलता की पराकाष्ठा है, जहाँ आनन्द का स्रोत है, जहाँ मौन संगीत है, हिमालय की स्निग्धता है, और समुद्र की उत्तुङ्ग लहरें हैं। उसे किस प्रकार से कहें ? जमीन पर रेंगते कीड़े को कैसे बतायें कि हिमालय कितना उच्च है, वहाँ कितनी शीतलता है।

गुरु तो एक उत्सव का नाम है। गुरु जीवन की धड़कन का नाम है जो इस शरीर में बहते रक्त की तरह ही प्रतिपल स्पन्दित हो रहे हैं। इन्हीं स्पन्दनों से परिचय प्राप्त करना, इन्हीं स्पन्दनों के साथ धड़कती जीवन का उत्सव है, जीवन का परिचय है और विराट अर्थों में गुरुदेव से परिचय है।

आकण्ठ छद्म में डूब गये, विलासता में रचपच गये। लोगों को यदि गुरु का परिचय दिया भी जाये तो बस वे यही कह सकते हैं कि यह स्वप्रचार की चेष्टा है। उनका कहना शायद गलत भी नहीं है क्योंकि वे अधिक सोच भी नहीं सकते। उन्हें पता ही नहीं कि सिंह किस प्रकार से झपट्टा मारकर एक अत्यन्त गौरव और गर्व के साथ जीता है, जंगल का राजा कहलाता है। छिछड़ों की नोचा-खसोटी तो श्वान के जीवन का अङ्ग होता है।

पूज्यपाद गुरुदेव ने जब हमें लेख का आदेश दिया तो हम एक धुन में खो गये। क्योंकि जितना कुछ गुरुदेव ने अपने प्रवचनों में नहीं कहा उतना उनके समीप बैठकर उनके पवित्र श्रीविग्रह की निर्मलता से, उनकी कोमलता से समझ में आ गया है। अब उन क्षणों को मैं शब्दों में बाँधू भी तो कैसे ? जो नहीं बँध पा रहा है वही उनका गुरुत्व है, वही यथार्थ में जीवन की जानने योग्य वस्तु है।

आज गीता की वही पंक्तियाँ दिमाग में आती हैं जहाँ भगवान श्रीकृष्ण जब अपने व्यक्तित्व को समझा नहीं पाते तो वे कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू यो समझ ले कि वृक्षों में वटवृक्ष मैं हूँ, गाय में कामधेनु मैं हूँ, हाथियों में ऐरावत मैं हूँ, और नदियों में गङ्गा भी मैं ही हूँ। ऐसी स्थिति में प्रतीक और रूपक के माध्यम से ही व्यक्तित्व को कहने का कुछ प्रयास किया जा सकता है लेकिन ऐसा कहना आज के युग में अविश्वसनीय ही लगेगा।

इसीका फिर फल है कि हम उनका परिचय इस युग में प्राप्त कर ही नहीं पा रहे हैं। अपनी किसी विशिष्ट छवि की पुष्टि उनमें पाते हुए बस वहीं तक संकुचित रह जाते हैं। उससे ऊपर उठकर उस परम शान्ति में प्रवेश नहीं कर पाते जहाँ सर्वथा मौन है। और यह मौन अपने अन्तस को मौन करते हुए ही तो प्राप्त हो सकता है। इन्द्रियों के संस्कार से कुछ कट जाने पर जो शून्य आ जाता है वहीं से गुरु परिचय प्रारम्भ होता है। गुरु परिचय प्राप्त करने से पूर्व इसी मौन तक की यात्रा करनी पड़ती है। तब समझ में आता है कि एक व्यक्तित्व जो देखने में हमारी ही भांति है, वह कैसे विराट व्यक्तित्व भी है, आध्यात्मिकता का आधार है, जीवन की वास्तविक गति है, प्रेरणा है और अनिर्वचनीय आनन्द है।

श्री प्रभु का परिचय हमें इसी रूप में प्राप्त हो, हम उनके सभी रूपों को प्रणाम करते हैं। हम जानते हैं कि इन रूपों के भी अर्थ हैं किन्तु विनम्रतापूर्वक अपने को अत्यन्त तुच्छ रूप में रखते हुए यह भी कहती हूँ कि गुरुदेव ! यह आपका परिचय नहीं है। अब समय आ गया है कि जो आपका वास्तविक परिचय है, जो आपकी मूल चेतना है उसका परिचय प्राप्त हो। दायरों में बांधकर और शास्त्रों में बांधकर आपको व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। यह सत्य है कि आज आपका यदि वास्तविक परिचय दिया जायेगा तो वह समाज के गले नहीं उतरेगा लेकिन आपका विराट व्यक्तित्व आने वाले हर एक युग के लिये वर्तमान रहेगा। कोई न कोई पीढ़ी तो चैतन्यता की उस स्थिति तक पहुँचेगी, जहाँ वह आपमें निहित कुछ अनुभव कर सकेगी।

मुझे भगवान बुद्ध की वह वाणी स्मरण में आती है जब उन्होंने कहा था कि ओ भिक्षुओ ! मैंने इस संसार के लोगों को लड़ते हुए देखा और पाया कि वह सदैव ऐसे ही लड़ते रहेंगे। तब मुझे इस संसार से वितृष्णा हो आई। प्रभु आप तो सबको शिशुवत देखते हैं, जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को मलमूत्र में लिपटे देखकर भी घृणा नहीं करती। लेकिन फिर भी मुझे इस जगत से वितृष्णा हो गई है। अब ये लोग इतने शिशुवत भी नहीं रहे जो सहज ही उपेक्षा कर दी जाये।

पूज्य गुरुदेव मैं नहीं जानती कि मैं किस तरह लिखूँ जिसमें मेरा हृदय आकण्ठ ही तृप्त है, जिसकी सुगन्ध चारों ओर बिखरी हुई है। ये धरती, ये आकाश, ये सूर्य, ये चन्द्र, ये तारे जिससे प्रकाशित हैं उसे शब्दों में कैसे कहूँ। घिसेपिटे तरीके से या अनुभूतियों से मैं आपका व्यक्तित्व कहना ही नहीं चाहती। अनुभूतियाँ तो बहुत छोटी चीजें हैं। मैं उनसे गम्भीर और पुष्टिदायक गरिमा व्यक्त करना चाहती हूँ। उनकी करुणा, उनकी क्षमाशीलता, उनकी सबको आत्मवत मानने की उदात्त स्थिति, उनकी चेतना, उनकी प्रखरता ही व्यक्त करना चाहती हूँ। मैं उस स्थान पर नहीं खड़ी हूँ, जहाँ पर खड़े होकर आपको निहार सकूँ और आँख में बिना एक अश्रुकण भरकर निहारे आपके विषय में कुछ कहूँ भी तो कैसे ? पूज्य गुरुदेव मुझे क्षमा करें, मैं आप पर कुछ नहीं लिख सकती।

---

३. परमार्थ सिद्धि में यदि परिस्थिति बाधक हो, तो दो उपायों से काम लो, या तो उदारतापूर्वक सुख-सम्पत्ति की भेंट देकर उसे अनुकूल बनाओ, या फिर त्याग के द्वारा उसकी सीमा से बाहर निकल जाओ। जब तुम मिली हुई वस्तुओं को दूसरों की सेवा सहायता के लिये त्याग करोगे, तब तुम्हें सर्वोच्च पद प्राप्त होगा।

—दिव्य-मन्त्रणा से

एक पत्नीव्रती, यति व बालब्रह्मचारी—

भगवान श्रीकृष्ण

श्री नारायण दत्त शास्त्री, (सेवा नि० आ० नि० अ०)
मालवन (करनाल)

हमारे ऐतिहासिक सभी ग्रन्थों को मन-माने ढंग से बिगाड़ा गया है। भगवान श्रीकृष्ण आनन्दकन्द महा योगिराज और ब्रह्मचारी थे। उनका विवाह केवल महारानी रुक्मणी के साथ ही हुआ था और उन्होंने अपने जीवन में एक बार ही भोग करके एक ही सन्तान पैदा की थी जो राजकुमार प्रद्युम्न के नाम से विख्यात है। आप ही कहें कि हमारे वाममार्गी ग्रन्थकारों ने भगवान कृष्ण की अनगिनत रानियां होने की जो कथायें ग्रन्थों में लिखी हैं क्या वह कपोल कल्पित नहीं है।

अरे मेरे भोले मित्रो! अगर योगिराज श्रीकृष्ण ने बहु-विवाह किये होते तो उन रानियों की सन्तानें भी तो होतीं और उन सन्तानों के नाम भी होते तथा उनके द्वारा किये गये कारनामों की गाथायें भी होतीं। यह तो ऐय्याश राजा-महाराजाओं ने पंडितों को धन देकर इस प्रकार के ग्रन्थ बनवाये हैं जिससे उन्हें अपने महलों को रानियों से भरने की सुविधायें हो जायें। श्रीकृष्ण ने ११-१२ वर्ष की उम्र में ही वृन्दावन छोड़ दिया था और जो वृन्दावन की गोपियां थीं वह सभी उनकी चाची, ताई, बुआ, बहनें आदि थीं। जो श्रीकृष्ण के नटखट स्वभाव की बाललीलायें देख-देखकर खुद भी उनके साथ बाललीलाओं का आनन्द लिया करती थीं जो अब रासलीलायें कही जाती हैं। राधा जी भी दूर के रिश्ते में कृष्ण भगवान की मामी लगती जो राजा वृषभान की सुपुत्री थी और दुष्ट कंस को मारने में श्रीकृष्ण के सत्याग्रह में राधाजी ने पूरा सहयोग-दान दिया था। वह कथा इस प्रकार है कि भगवान श्रीकृष्ण ने मथुरा के दुष्ट राजा कंस का नाश करने के लिये एक ग्वालबाल दल की स्थापना की थी और उसके नेता खुद भगवान श्रीकृष्ण ही थे।

भगवान कृष्ण ने वृन्दावन की जनता और ग्वालबाल दल में जो व्याख्यान दिया वह इस प्रकार से था :—

भाइयो! राजा कंस ने अपने राक्षस भेज-भेजकर हमारे ब्रज के सैकड़ों बच्चों का वध बड़ी बेदर्दी से करवा डाला है। इसके जुल्मो सितम को रोकने का सरल उपाय है कि ब्रज से घी दूध की बिक्री मथुरा के लिये एकदम बन्द हो जानी चाहिये, हमें धन का करना भी क्या है। वस्त्र हमारे यहां ही बुने जाते हैं, खेती द्वारा अनाज हमारे ही खेतों में पैदा होता है। दूध, घी, मक्खन हमारी गाय-भैंसें देती हैं। अगर हमारी माता-बहनें जेवर गढ़वाकर पहनने का लालच कुछ दिन के लिये छोड़ दें तो हम अपना घी, दूध, मक्खन खाकर कसरत कर दण्ड-बैठक कर शीघ्र ही ही बलवान बन जायेंगे तो फिर किस दुष्ट की

हिम्मत होगी जो हम लोगों को सता जाये। कहो भाइयो ! जिन्हें मेरी बात पसन्द है वह हाथ उठाएँ और जिन भाइयों को मेरी बात पसन्द नहीं है वह विरोध प्रकट कर सकते हैं। सभी नौजवान भाइयों ने श्रीकृष्ण भगवान के पक्ष में अपने हाथ उठाकर कहा—कन्हैया का प्रस्ताव हम सबको स्वीकार है और आज से मथुरा को घी, दूध, मक्खन बिकने के लिए कतई नहीं जायेगा।

हमारी माता बहनें जो हमें आज तक छाछ पिला-पिलाकर सारा दूध, घी मथुरा के राक्षसों में बेचकर हमें कमजोर बनाती रही हैं (जैसे आजकल भी हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। हमारे गाँवों से गौ-भैंसों, दुधारू पशुओं को मुसलमानों के हाथों कटवा रहे हैं तथा जो दूध है वह डिब्बों में भरकर डेरियों में चला जाता है उससे बना हुआ घी विदेशों में जाता है। उसके बदले में हम चाय पीकर कमजोर होते हैं। दुधारू पशुओं का नाश होता जा रहा है। यह हम भारतीयों को कमजोर बनाने की नीति है) कल से हमारा ग्वालबाल दल उन्हें राजी से या नाराजी से जैसे भी होगा घी, दूध बेचने से रोकेंगे। कुछ बड़े-बूढ़ों ने इस प्रस्ताव का विरोध भी किया और सर्व प्रथम नन्द बाबा ही बोले कृष्ण ! तू बावला हो गया है। भला राजा का मुकाबला कौन कर सकता है। राजा भगवान का स्वरूप होता है। राजा की आज्ञा मानने में ही हमारी भलाई है। कृष्ण अभी तुम बालक हो अभी राजनीति के दाव-पेंच क्या समझो। भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया—बाबा ! राजा जनता का पिता होता है। यह हम भली प्रकार जानते हैं, अगर जालिम राजा बिना कसूर ही जनता को सताये तो उसे बदलना जनता का कर्तव्य हो जाता है। बिना कुर्बानी के कुछ भी नहीं होता। बिना मेहनत के तो भगवान रोटी भी नहीं देता। आप बैठे-बैठे तमाशा देखें कि कल से हमारे ग्वालबाल दल का कार्य किस प्रकार सफल होता है। हमारे सत्याग्रह की किस प्रकार जीत होती है। ग्वालदल ने भरी पंचायत में नारा बोला जय कन्हैयालाल की। और कल से सभी ग्वालबाल दल कन्हैया के कहने के अनुसार कार्य करेंगे। जिस नौजवान को हमारे दल में नाम लिखवाना हो वह हँसी-खुशी से लिखवा दे जिसे सोच-विचार कर लिखवाना हो वह बाद में लिखवा सकता है। हमारे ग्वालबाल दल में पूरे ब्रज के कार्य-कर्ता नर-नारी भी अपना नाम हँसी-खुशी लिखवा सकते हैं।

प्यारे बन्धुओ ! आप विश्वास करें सभी गोकुलवासियों के नौजवान बच्चों ने इस सत्याग्रह में अपना नाम स्वयंसेवकों में लिखवाकर तुरन्त प्रतिज्ञा की कि आज से हम श्याम सुन्दर की आज्ञा पर जीयेंगे और मरेंगे। और सारे ब्रज मण्डल की दूध, घी बिक्री बन्द करवाकर ही अपने सत्याग्रह को सफल बनायेंगे। बन्धुओ ! अगले दिन सुबह होने से पहले ही सारा ग्वालबाल दल उस रास्ते के चौराहे पर जाकर जमा हो गया जिस रास्ते से गोकुल की गोपियाँ (ग्वालिनियाँ) घी दूध बेचने को मथुरा जाया करती थी। यह ग्वालबाल दल जिस समय के इन्तजार में था वह समय भी आ पहुँचा और आठ दस गोपियाँ घी, दूध की मटकियाँ अपने शीश पर धरे इठलाती, मुस्काती आ पहुँची, तब श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा माताओ और बहनो ! आपको अभी तक पता नहीं चला है कि आज से मथुरा जाकर घी दूध बेचना निषेध है। इस

घी, दूध को अपने गोकुल ग्राम के सभी बच्चों को खिला-पिलाकर बलवान बनाओ। राक्षसों को बलवान बनाने में हम लोगों की बड़ी हानि हो रही है।

इतने में ही बीस-पच्चीस गोपियों का एक झुण्ड और वहाँ आ पहुँचा। उनमें से एक मोटी ग्वालिन बोली क्या मामला है और कैसे सभी खड़ी हो। तो उनमें से एक गर्विली ग्वालिन बोली! बहन यह नन्दबाबा का छोरा कहता है कि आज से घी-दूध की बिक्री बन्द। क्या यह बौरा हो गया है। इसे यह पता नहीं कि घी-दूध की बिक्री से ही यशोदा रानी बनी और नन्द बाबा के अनगिनत गाय भैंसें बँधी हैं। तो यह बोली बकने वाले इस यशोदा के छोरे को मैं भी देखती हूँ यह हमें कैसे रोकता है। इतना सुनते ही श्याम सुन्दर ने अपने ग्वालबाल दल से कहा तुम रास्ता रोककर लम्बे-लम्बे होकर लेट जाओ, जिन्हें जाना होगा वह हमारे पेट पर पैर रखकर आगे बढ़ेगी। अपने कन्हैया की वाणी सुनकर सभी ग्वालबाल दल जो हजारों की संख्या में थे, तत्काल रास्ता घेर कर लम्बे-लम्बे लेट गये, तब उस मोटी ग्वालिन ने कहा—इनकी ढिठाई की कतई परवाह न करो इनके सीने पर पैर रखकर सड़क पार करो। उस मोटी ग्वालिन के कहने से जो नीच प्रकृति की गोपियाँ थीं, उनके सीने पर पैर रखकर आने लगीं और जो भली थी वह खड़ी-खड़ी तमाशा देखती रही। तभी मनसुखा ने चीखकर कहा कन्हैया जुल्म की हद हो गई, यह नीच राजी से मानने वाली नहीं है।

अतः भाइयों! मेरी तुम्हें आज्ञा है कि इनकी मटकियों को लाठियाँ मार-मारकर फोड़ दो। मनसुखा श्रीकृष्ण का खास मित्र था उसकी आज्ञा को श्याम सुन्दर की आज्ञा समझकर सभी ग्वालों ने उठा-उठाकर लाठियाँ मार-मार कर उन ग्वालिनियों की मटकी फोड़-कर उनके सभी घी, दूध को मिट्टी में मिला दिया। इस भागा-दौड़ी में शोर-शराबे के बीच अपने कन्हैया की बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

जिन गोपियों ने ग्वालबालों के सीने पर अपने पैर रखे थे उन सभी गोपियों के कपड़े घी, दूध में बुरी तरह सन गये। और गुस्से के कारण उनके चेहरे बड़े भयानक बन गये थे। वह गालियाँ बकती हुई तथा रोती-पीटती सीधी यशोदा मैया के पास जा पहुँची और गरज-गरज कर कहने लगी, देखो अपने सपूत की करतूत, उसने हमारा क्या हाल कर डाला है। तू रानी है तो अपने घर की। हम अपने नुकसान की रकम तुमसे पाई-पाई वसूल करके ही अपने घर जायेंगी। यशोदा रानी बोली—बहनों! धीरज धरकर मेरी बात तो सुनो, कल की ग्रामसभा में यह प्रस्ताव पास हो गया था कि मथुरा जाकर घी, दूध मक्खन बेचना कतई बन्द। इसमें गोकुल ग्राम के सभी नौजवान शामिल थे इन नौजवानों ने प्रण किया है कि ब्रज-भूमि के घी, दूध की बिक्री मथुरा के वास्ते हमें बन्द करवानी है। तुम सबको इस बात का पता तो पड़ ही गया होगा। फिर तुमने खुद ही बहनो अपने बालकों की परवाह नहीं की। और मुझ से झगड़ा करने यहाँ चली आयी, अकल से काम लो, और अपने जवान बच्चों की बात मानो तभी कंस जैसे अन्यायी राजा का राज पलटेगा।

यशोदा माता के समझाने से सब ही गोपियाँ समझ गयीं कि यशोदा रानी की बात ठीक ही है। हम सबको प्यार पूर्वक ग्राम-सुधार की बात समझकर ही सुमत के अर्थात् अच्छी

बुद्धि के साथ रहना चाहिये और अपने बच्चों के कार्यों में विघ्न नहीं डालना चाहिये।

बन्धुओ! गोकुल ग्राम के दूध, घी की बिक्री बन्द हो गई तथा प्रत्येक माँ ने सभी बहन-बेटियों को समझा-बुझाकर और गोप-बालों ने ग्राम-ग्राम घूम-फिरकर कन्हैय्या की कही हुई बातों को जनता को समझाया तो सभी ग्रामों से घी, दूध की बिक्री बन्द हो गई। मथुरा के बाजारों में घी, दूध की एक बूँद का भी दर्शन दुर्लभ हो गया और मथुरा के बच्चे एक-एक बूंद घी, दूध को तरस गये। जब राजा कंस को इस बात का पता पड़ा तो वह नन्द बाबा से नाराज हो गये। राजा कंस ने अपने दूत बरसाने भेजकर राधा के पिता वृषभान को मथुरा बुलाकर उनसे कहा चौधरी जी! हम आज से नन्द बाबा की प्रधानता छीनकर तुम्हें ब्रज का मुख्य प्रधान बनाते हैं। कल से आप हमारे यहाँ घी, दूध भेजने का प्रबन्ध करो। जिससे मथुरावासियों की परेशानियाँ दूर हो जायेंगी। राजा कंस की बात सुनकर राधा के पिता बड़े ही प्रसन्न हुए और घी, दूध बरसाने से भिजवाने का वचन दे दिया। और अपनी रक्षा हेतु, कंस राजा के कुछ सिपाही अपने साथ लेकर बरसाने गाँव आ पहुँचे।

प्यारे मित्रो! अगले दिन से ही बरसाने गाँव से घी, दूध, मक्खन की मटकियाँ मथुरा पहुँचने लगीं और मँहगे दामों में बरसाने का घी, दूध बिकने लगा। मथुरा की जनता का मसला हल हो गया। जब कन्हैय्या को यह पता पड़ा कि मेरे बाबा की प्रधानता छीन-कर वृषभान को बड़ा प्रधान बना दिया है। इतना सुनकर सत्याग्रह के दीवानों की टोली बरसाने भी जा पहुँची और वहाँ पहुँच कर नारे लगाने शुरू कर दिए कि राजा कंस जालिम है। मथुरा को घी, दूध भेजना उचित नहीं। नारेबाजी सुनकर बरसाने की जनता अपने-अपने घरों से बाहर निकल आई, कृष्ण और उनके साथियों की बातें समझने लगी। राधा के पिता के आदमियों और सिपाहियों ने सत्याग्रहियों पर लाठियाँ बर्सानी शुरू कर दीं और सत्याग्रहियों के सिर फोड़ डाले तथा काफी सिपाही खून से लथपथ हो गये। यही वह बरसाने की मशहूर होली है जिसको आज कोई जानता तक नहीं है।

प्यारे बन्धुओ! जब यह खबर वृषभान नन्दिनी राधा ने सुनी तो वह एकदम दौड़ती हुई और यह कहती चली आई कि दुष्ट राजा कंस ने यह अच्छी चाल चली कि भाइयों के सिर भाइयों से फुड़वा दिये हैं। और कन्हैया के निकट आकर बोली कृष्ण जो होना था वह हो गया। अब तुम निश्चिन्त रहो, आज से घी, दूध मथुरा कतई नहीं जायेगा, यह राधा आज से तुम्हारे सत्याग्रहियों में शामिल है। मैं घर-घर जाकर नारियों से कहूँगी कि घी, दूध बेचना अन्याय है और तुम लोग पुरुषों में प्रचार करना। राधा ने जो वचन कृष्ण को दिया था उसने उसे पूरा किया और घर-घर प्रचार कर घी, दूध की बिक्री बन्द करवा दी। ब्रजभूमि की सारी जनता उसी दिन से रुक्मणी कृष्ण की जय न बोलकर राधा-कृष्ण की जय बोलती है। यही राधा-कृष्ण का असली प्रेम था जिसका स्वरूप आज निर्लज्जता बन गया है।

प्यारे बन्धुओ! भगवान कृष्ण का सबसे बड़ा दुश्मन शिशुपाल था। क्योंकि श्रीकृष्ण विश्व सुन्दरी रुक्मणि को हर लाये थे और वह कुँवारा रह गया था। जब राजा युधि-ष्ठिर के यज्ञ में दोनों इकट्ठे हुए तो कृष्ण को सम्मान देने का विरोध अनेक प्रकार की

गालियाँ बक-बककर केवल शिशुपाल ने ही किया था, परन्तु उसने भी श्रीकृष्ण को लम्पट, व्यभिचारी, कामुक नहीं कहा था, आप ही विचारें कि अगर श्रीकृष्ण अति स्त्री-भोगी, कामी, व्यभिचारी होते तो क्या महाभारत में इस युद्ध से पाण्डवों को वह विजय दिलवा सकते थे और गीता जैसी अनमोल पुस्तक सुना सकते थे, जिसे आज सारा विश्व पढ़ और सुनकर हैरान है। यह कार्य एक महायोगी और ब्रह्मचारी ही कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण में ये दोनों ही गुण थे, इसीलिए आज वह घर-घर में पूजनीय हैं जोकि 'कृष्ण' 'सुदामा' और 'महाभारत' पढ़कर भी आप समझ सकते हैं कि श्रीकृष्ण कितने महान थे।

अति स्त्री-भोगी या अनेकों रानियों के पति होने का जो दुष्प्रचार पुस्तकों में पाया जाता है व राधारानी को उनकी पत्नी व प्रेमिका बतलाया है यह सर्वथा गलत है। यह कार्य वाममार्गी कामुक पण्डितों का है ताकि उनके द्वारा किये गये ऐय्याशी के कुकर्मों पर कोई अंगुली न उठा सके और ऐसे प्रचार में ऐय्याशी तथा उनके विरोधी राजाओं ने भी धन देकर वाममार्गी पण्डितों द्वारा इस दुष्प्रचार को बढ़ावा दिया। पुस्तकों में इसका समावेश कराया ताकि उदाहरण पेश किया जा सके कि भाई हम पर अधिक पत्नियाँ रखने का विरोध क्यों करते हो, श्रीकृष्ण के भी तो १६००० गोपियाँ थीं। यह उनकी गलत धारणा व दुष्प्रचार है अपना कार्य साधने हेतु। महाजनो! "येन गता स पन्था" उनके जैसे कार्य करके तो कोई दिखाए। उनकी बहादुरी बड़े-बड़े दुष्ट राक्षसों को मिटाना, धर्म का प्रचार आदि जिससे आज वे सारे विश्व में पूजनीय हैं। उनका जीवन ही चमत्कारों से भरा था।

प्रमाण तथा एक उदाहरण के तौर पर हमारे गुरुदेव योगी-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने व्याख्यान में कई बार कहा करते थे कि एक बार १६,००० गोपियाँ श्रीकृष्ण भगवान के सद्गुरु संदीपन मुनि के आश्रम में उनकी पूजा सत्कार के लिए १६,००० हजार थाल व पूजा भोज्य सामग्री लेकर जब यमुना तट पार पहुँचीं तो उस समय यमुना नदी पूर्ण रूप से चढ़ी हुई थी क्योंकि आषाढ़ की पूर्णिमा थी वर्षा के दिन थे। वह संशय में पड़ गयीं कि अब यमुना पार कैसे की जाए। उन्होंने सलाह बनाई कि जिसकी प्रेरणा से हम जा रही हैं उनसे ही पूछा जाये। उनमें से कुछ गोपियाँ वापिस होकर भगवान कृष्ण के पास आयीं और यमुना द्वारा रास्ता देने की बात कही। श्रीकृष्ण ने कहा जाओ यमुनाजी से कह दो कि यदि श्रीकृष्ण जी एक पत्नीव्रत पति हैं तो हमें रास्ता दे दो। उन गोपियों ने ऐसा ही किया। यमुनाजी ने तुरन्त ही रास्ता दे दिया और वहाँ जाकर उन सब गोपियों ने गुरु की पूजा-अर्चना की।

प्यारे मित्रो एवं बन्धुओ! अब आगे श्रीकृष्ण जी और राधा जी के प्रेम की बात सुनो। कन्हैया जी और राधा जी ने घर-घर एवं ग्राम-ग्राम जाकर जगह-जगह प्रचार करके घी-दूध की बिक्री बिल्कुल ही बन्द करवा दी और वहाँ के नौजवान सत्याग्रहियों को भी, दूध, मक्खन खाने के लिए मुफ्त में ही मिलने लगा। जगह-जगह अखाड़े खुल गये जहाँ कसरत करके ब्रज के सभी ग्वाल-बाल बन और वहाँ की समस्त जनता बलवान बन गई और राजा कंस के जितने भी सेनापति उनका विनाश करने के लिए आते वह सभी कन्हैया और उनके साथियों द्वारा मारे गये। उसके साथ ही वह दिन भी आ पहुँचा

जब श्रीकृष्ण ने मथुरा नगरी में पहुँचकर कंस को मारकर उसके नाना उग्रसेन यानी कंस के पिता जी को वहाँ का राजा बना दिया। ऐसे थे हमारे योगिराज, महाराज महाबलवान। योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी, एक पत्नीव्रतधारी व शक्ति पुरुष थे। राधा जी ने कन्हैया के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आन्दोलन को सफल बनाने में काम किया और ग्वालबाल दल के साथ अतिपरिश्रम के कारण वह सेक्रेटरी पद पर आसीन हुयी। वे उस दल में दूसरे नम्बर पर थीं। राधा जी के साथ भगवान श्रीकृष्ण का शुद्ध प्रेम था। दल के कार्य में राधाजी ने दिन-रात एक कर दिया, इसीलिए कि उनमें शुद्ध प्रेम था, वह उनकी पूर्ण सहायिका रहीं। भगवान श्रीकृष्ण प्रधान पद पर रहे, बलराम जी उपप्रधान पद पर रहे। और ब्रज की सारी जनता अपने नेताओं पर न्यौछावर थी। समस्त गोपियां उनके दल में भर्ती हो गयीं क्योंकि ब्रजभूमि की सारी जनता कंस के क्रूर अत्याचारों से दुःखी थी। सब गोपियों से श्रीकृष्ण के चाची, ताई, बहनें, बुआ आदि अनेक तरह के रिश्ते थे। भगवान से उनका इस बात से स्नेह था, पूरा प्यार था, उनमें पूर्ण आस्था-विश्वास व श्रद्धा थी। वे बहुत दिनों से चाहते थे कि कोई ऐसा नेता हमें मिले जो इस अत्याचारी, निर्दयी राजा को मिटा दे। साथ-साथ मिलकर कार्य करने व राधा जी और कन्हैया जी के शुद्ध प्रेम के कारण ही उन दोनों की एक साथ जय बोली जाने लगी, जिसे आज तक बोला जाता है।

ऐसे नेता की हमें आज भी जरूरत है जो इन अति क्रूर, लालची, निर्दयी, उग्रवादी, अत्याचारी, कुर्सी के भूखों को मिटा दे। इस समय भी प्रजा इन शासकों से अति पीड़ित है। प्रभु से प्रार्थना करो कि इनसे छुटकारा मिले और साफ छवि वाले नेताओं के हाथ में सत्ता आये।

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन के कारनामे महाभारत और गीता में आपको विस्तार सहित पढ़ने को मिलेंगे। आप उनकी गीता और महाभारत नामक पुस्तकों को अवश्य ही पढ़ा करें।

★ मन को सबसे मोड़कर किसी वस्तु विशेष में तन्मय करने की चेष्टा को ही प्रत्याहार कहते हैं।

× × ×

★ जब बायें रन्ध्र से श्वास क्रिया होती हो तब विश्राम करो। जब दक्षिण रन्ध्र से होती हो तब काम करो। जब दोनों रन्ध्रों से होती हो तब ध्यान करो।

× × ×

★ यदि तुम अपने हृदय से ईर्ष्या और घृणा का भाव चारों ओर बाहर भेजो, तो वह चक्रवृद्धि ब्याज सहित तुम पर आकर गिरेगा, दुनिया की कोई भी ताकत उसे रोक न सकेगी। यदि तुमने एक बार उस शक्ति को बाहर भेज दिया, तो फिर निश्चित जानो, तुम्हें उसका प्रतिघात सहन करना ही पड़ेगा। यह स्मरण रहने पर तुम कुकर्मों से बचे रह सकोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

★ भव से पार कैसे हों ? ★

❀ श्री विष्णुप्रसाद व्यास (बीना)

प्रत्येक बुद्धिमान, संस्कारी, मोक्षाभिलाषी जिज्ञासु के अन्तर्मानस में यह विचार कि "भव से पार कैसे हों ?" हिलोरें लेता ही रहता है। यह मुमुक्षा (मुक्ति प्राप्त करने की आशा) नीचे कहीं अन्तःकरण में सूक्ष्म रूप से कभी-कभी सिर उठा लेती है और योग मार्ग पर चलने की इच्छा वाले उस मनुष्य के मन को उद्वेलित कर देती है। साधक अपने कार्य-व्यवहार में कितना ही व्यस्त क्यों न हो किन्तु उसके पिछले जन्मों में की हुई योग साधनायें उसके चित्त को एक बार तो हिला देती हैं कि "तुम भव से पार कैसे हो सकोगे ?" और उस क्षण में तो वह साधक भी हृदय से सोचने लगता है कि मेरा अमूल्य समय सारे का सारा सांसारिक झमेलों में निकला जा रहा है और मैंने कई बार संकल्प भी किया कि अब से प्रतिदिन भक्ति एवं योग के साधन किया करूँगा परन्तु 'चार दिनों की चाँदनी फिर अँधेरी रात' वाली कहावत ही चरितार्थ होकर रह जाती है।

भव से पार होने के लिये तीन कर्त्तव्यों का पालन करना अनिवार्य है—

(१) तुलसी ममता राम सों— अर्थात् परमात्मा अथवा अपने आराध्यदेव भगवान के प्रति मन के अन्दर ममता भरी हो अर्थात् साधक अपने प्रेम के तारों को इष्टदेव के चरणों में सुदृढ़ होकर बाँध दे। वह अपने उपास्य देव भगवान में अथवा सगुण साकार सन्त सद्गुरुदेव जी में ही उस निराकार-निर्गुण ब्रह्म को प्रत्यक्ष विराजमान होता हुआ देखा करे। अपने हृदय की सारी गुत्थियों को उनके सदुपदेश-सेवा और भजन एवं योगाभ्यास के द्वारा सुलझाकर अपने शरीर, मन, बुद्धि और चित्त को उन्हें समर्पित कर दे। जो मन की ममता देह में, इन्द्रियों में, मन बुद्धि और सांसारिक वस्तु-बान्धवों में अटकी हुई है उसे सब ओर से तोड़ ले और पूर्ण रूप से अपने इष्टदेवजी का ही बन जाय। अपने संकल्प-विकल्पों को भी उनके हवाले कर दे फिर भवसागर अपने आप ही ऐसे सूख जायेगा जिस प्रकार प्रचण्ड ग्रीष्म काल में छोटी नदियाँ और सरोवर स्वयं सूख जाते हैं। इसका कारण यह है कि सांसारिक पदार्थों और मोह-ममता के सम्बन्धों के द्वारा आने वाली कलुषित एवं विषैली भावनायें उसके मन, बुद्धि और चित्त को चलायमान न कर सकेंगी। मन की सारी धारा सन्त सद्गुरुदेव जी की प्रसन्नता को हासिल करने में ही लीन होगी। इसका परिणाम यह होगा कि जीव के मानस सरोवर में भगवान का ध्यान, उनकी रुचिर वचनावली उनकी सेवा में दिया हुआ समय, उनके नामाभ्यास की साधना और उनकी ही की हुई आरती—इन सभी शुभ कार्यों की सुगन्धि धीरे-धीरे व्याप्त हो जायगी और साधक अपने इस जीवन में सद्गुरुदेव जी की आज्ञा व कृपा के अनुसार किए हुए निष्काम कर्मों का फल अपने भगवान की हार्दिक

प्रसन्नता के रूप में स्वयं प्राप्त कर लेगा। इसके अतिरिक्त शिष्य साधक का जो समय केवल सांसारिक काम-काज में खर्च होता था और उसमें संसार की कलह-कल्पनायें मन को और दूषित कर सकती थीं वह भवसागर से पार करने वाले कार्यों में बाधक न हो पायेगी। कितना बड़ा मान ले लिया एक शिष्य ने। ममता को अपने मालिक के लिये सुरक्षित रखना चाहिये। २४ घण्टों की दिनचर्या में विशेष करके अपने सन्त सद्गुरुदेव जी का ही स्मरण करे। बाहर के कार्यों को भी शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा सम्पन्न करना है किन्तु अन्तर्हृदय में मालिक की मीठी-मीठी स्मृति रखनी ही चाहिये। ऐसी ममता मनुष्य को आवागमन के चक्र से छुड़ाने वाली है। सन्तों के वचन हैं :—

सुमिरण की सुधि यों करै,
ज्यों गागर पनिहार।
हाले डोले सुरति में,
कहे कबीर विचार॥

पनिहारिनें सिर पर घड़े उठाये हुए बातों का आनन्द लेती हुयी घर की ओर बढ़ती चली जाती है परन्तु उनके अन्तर्मन में एक यह भावना भी काम कर रही होती है कि हमारे सिर पर रखे हुए घड़ों का सन्तुलन कहीं बिगड़ न जाय, नहीं तो हमारा जल ले जाने का सारा श्रम ही निष्फल हो जायेगा।

इसी तरह सन्त सद्गुरुदेव जी का अनन्य उपासक एक साधक उनकी आज्ञा के सार में बँधा हुआ व्यावहारिक कार्य प्रसन्न चित्त होकर करता है किन्तु उसके हृदय की तलहटी में यह भी गूंज उठा करती है कि मेरा यह कार्य भी परम प्रिय इष्टदेव जी की प्रसन्नता के लिये ही है। इसे कहते हैं 'तुलसी ममता राम सों।'

(२) समता सब संसार—भव से पार होने के लिए संसार के प्रति एक सच्चे उपासक का दृष्टिकोण समता का होना चाहिये। भक्त साधक ही संसार में समता की नौका पर सवार होकर भवसागर से अपने प्राणेश सन्त सद्गुरुदेव जी की अकारण कृपा से पार हो जाते हैं। परिपूर्ण सद्गुरुदेव जी के अनन्य भक्त को यह समूचा जगत बड़ा ही प्रिय लगता है। वह हर किसी से प्यार का ही लेन-देन रखता है। कारण यह क्योंकि उसके अपने मालिक जो ऐसे हैं। उन्हें कभी किसी जीव से घृणा, द्वेष अथवा आपत्ति नहीं होती है। श्री भगवान का कथन है :—

समोऽहं सर्व भूतेषु,
न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
(गीता अ० ९ श्लोक २९)

हे अर्जुन! मैं सब भूतों में समभाव से व्याप्त हूँ। न मुझे कोई प्रिय है और न अप्रिय है।

इसी प्रकार सच्चा भक्त भी न किसी वस्तु या व्यक्ति से राग रखता है न द्वेष ही।

संसार में समभाव से विचरण करने वाले पुरुष के अन्दर द्वन्द्व भावनाओं को कोई स्थान नहीं। ऐसा साधक ही आत्मा के साक्षात्कार का उत्तम अधिकारी बन सकता है।

श्री महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में अनुगीता पर्व के अन्तर्गत एक प्रसंग आता है कि :—

श्री जनमेजय जी ऋषि वैशम्पायन जी से पूछते हैं—"हे ब्रह्मदेव ! शत्रुओं का नाश करके जब महान आत्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन सभा भवन में रहने लगे, उन दिनों उन दोनों में क्या बातचीत हुई ?" इस पर श्री वैशम्पायन जी बोले—

"दोनों मित्र बड़े ही प्रसन्न चित्त होकर वहाँ निवास कर रहे थे कि एक दिन अर्जुन ने भगवान से पुनः प्रार्थना की कि मुझे उस गीतामृत के सदुपदेशों का पान करा दो।

उस समय आपने ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य और निष्काम कर्मयोग के अति मधुर, शान्ति-दायक और रुचिकर वचन सुनाये थे परन्तु उस समय मेरे चित्त के विचलित हो जाने के कारण मुझे भूल से गये हैं।"

श्री भगवान बोले—"हे अर्जुन ! वह समय ही और था—उस समय हमारे चित्त में बड़े गहरे एवं गोपनीय ज्ञान की तरंगें उछल रही थी—हमने तुम्हें शुक्ल और कृष्ण गति के रहस्यों का भी बोध कराया था—अब वह सब कुछ दोहराया न जा सकेगा।"

हाँ ! एक परम सिद्ध ब्राह्मण जो ब्रह्म-लोक से इस धराधाम पर उतरे थे और महर्षि काश्यप में जो मोक्ष पद के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर हुए थे उनका सार तुम्हें सुनाता हूँ जिससे तुम्हारे चित्त को परम शान्ति मिलेगी। काश्यप जी ने इस सिद्ध पुरुष से यह प्रश्न किया कि—ब्राह्मण भवसागर से पार उतरने का क्या उपाय है ?

ब्राह्मण—जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों को अनित्य, शरीर को अपवित्र वस्तुओं का समुदाय और मृत्यु को कर्म का फल समझता है तथा सुख के रूप में जो कुछ भी प्रतीत होता है उसे दुःख ही दुःख मानता है वह इस घोर तथा दुस्तर सागर से पार हो जाता है।

काश्यप—संसार के बन्धन से मुक्त कौन होता है ?

सिद्ध ब्राह्मण—काश्यप जी ! जो मनुष्य (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) शरीरों में से क्रमपूर्वक पूर्व का अभिमान छोड़कर कुछ भी चिन्तन नहीं करता और मौनभाव से रहकर सबके एकमात्र अधिष्ठान (आधार) परब्रह्म सद्गुरु परमात्मा में लीन रहता है, वही संसार बन्धन से मुक्त होता है।

(२) जो नियम परायण और पवित्र रह-कर सब प्राणियों के प्रति अपने जैसा व्यवहार करता है, जिसके भीतर सम्मान पाने की इच्छा नहीं है तथा जो अभिमान से दूर रहता है वह सर्वथा मुक्त ही है।

(३) जो किसी के द्रव्य का लोभ नहीं रखता, किसी का तिरस्कार नहीं करता, जिसके मन पर द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता और जिसके चित्त की आसक्ति दूर हो गई है वह सर्वथा मुक्त ही है।

(४) जो किसी भी कर्म का कर्ता नहीं बनता, जिसके मन में कोई कामना नहीं है, जो इस जगत को अश्वत्थ अर्थात् अनित्य (कल तक न टिक सकने वाला) समझता है तथा जो सदा इसे जन्म-जरा और मृत्यु से युक्त जानता है, जिसकी बुद्धि वैराग्य में लगी रहती है और जो निरन्तर अपने दोषों पर दृष्टि रखता है, वह शीघ्र ही अपने सकल बन्धनों का नाश कर देता है।

(५) जिसकी दृष्टि में आत्मा पांच भौतिक (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) गुणों से हीन, निराकार, कारण रहित तथा निर्गुण होते हुए भी (माया के सम्बन्ध से) गुणों का भोक्ता मात्र है, वह मुक्त हो जाता है।

पञ्चभूत गुणैर्हीनम मूर्त्तिमदहेतुकम् ।
अगुण गुणभोक्तारंयः पश्यति समुच्यते ।।

(अनुगीता पर्व १६)

(६) जो बुद्धि से विचार करके शारीरिक और मानसिक सब संकल्पों का परित्याग कर देता है—वह बिना ईंधन की आग के तुल्य धीरे-धीरे शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

विमुक्तः सर्वसंस्कारैस्ततो ब्रह्म सनातनम् ।
परमाप्नोतिस शान्तमचल नित्यक्षरम् ।।

(श्लोक १४)

ये हैं संक्षिप्त रूप से बताये हुए कतिपय लक्षण उस मोक्षाभिलाषी पुरुष के जो भव से पार हो जाया करता है। यही था गीता के उपदेश का सार—

अब हम आते हैं गोसाईं तुलसीदास जी के दोहे की दूसरी पंक्ति में—

राग न रोष न दोष दुःख,
दास भये भव पार ।

तीसरा उपाय भव जल निधि से पार उतरने का यह है कि वह साधक इन दोषों से सर्वथा मुक्त होना चाहिए। रागद्वेष दोष दृष्टि और दुःख अर्थात् शरीर के प्रकृति के एवं मन के परिताप—इन सब दोषों से जो रहित हो वह भव निधि को तर जाने का पात्र है।

अन्त में एक गुण की चर्चा भी सन्त तुलसीदास जी कर देते हैं कि मुक्तिकामी साधक में दास्यभाव कूट-कूटकर भरा होना चाहिये यदि हृदय में दासता, दीनता और गरीबी अथवा खाकसारी नहीं है तो भी उसमें ऊपर गिनाये हुए दुर्गुण दूर नहीं हो सकते और उस साधक से भवनिधि से पार नहीं हुआ जा सकता।

भगवान श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा अर्जुन को उस सिद्ध ब्राह्मण और काश्यप मुनि का सम्वाद सुनाते हुए आगे कथन करते हैं कि उस ब्राह्मण ने काश्यप को वे योग-साधन भी बतलाये जिनके अपनाने से जीव भव से सहज रूप में पार हो जाता है। इस सूरत में शब्द योग के साधन से जीव में राग (लगाव) रोष बात-बात में खीझ उठना, दूसरों के दोषों पर निगाह रखना और किसी प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव करना—ये सारे दुर्गुण स्वयमेव शान्त हो जायेंगे और जीव सच्चे अर्थों में "दास" बनने के प्रयत्नों में पूर्णतया सफल हो जायगा।

सिद्ध ब्राह्मण ने कहा कि हे काश्यप ! अब मैं उस सर्वोत्तम योग का वर्णन करूंगा जिससे कोई भी पुण्यात्मा सहज भाव से अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है।

सबसे पूर्व तो उस आत्म दर्शन के उत्सुक योगशील पुरुष को परिपूर्ण सन्त सद्गुरुदेव जी की पुनीत चरण-शरण ग्रहण कर लेनी चाहिये। बिना उनकी प्राप्ति के यह जीव कभी भी अपने मन की अटपटी चालों को समझने में स्वयं सफल न होगा।

निराकार मन यद्यपि कोई आकार-प्रकार नहीं रखता परन्तु परिसूक्ष्म आत्मा के दर्शनों की अभिलाषा इसकी कभी पूर्ण न होगी जब तक यह सगुण साकार ब्रह्मस्वरूप सन्त सद्गुरुदेव जी के गुण मन्त्र नाम से परिचित न हो जायेगा। वह नाम मन्त्र ही उसके मन के भीतर बैठे हुए छः प्रबल रिपुओं को जिनके

नाम ये हैं "काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या" सांप सपनों में से समर्थ हैं। सन्त सद्गुरु ही परब्रह्म हैं। सन्त रूप में इसी हेतु ही अवतरित होते हैं कि अभ्यास परायण जीवों के मन को सुनिर्मल कर दें—वो इस देव दुर्लभ मानुष देह में आई हुई आत्मा को फिर से भवसागर की उत्ताल तरंगों में डगमगाता हुआ नहीं देख सकते। मुमुक्षु बनना एक निर्वाण पद के अभिलाषी को अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि कलि कुटिल मन रूपी महानाग को शब्द रूपी गारुणी मन्त्र देकर वशीभूत करना केवल सन्त पुरुष ही जानते हैं।

"शब्द बिना साधु नहीं, द्रव्य बिना नहि साह"—धन सम्पत्ति के बिना कब कोई सेठ कहलाया। इसी तरह जिस साधु ने शब्द की कमाई नहीं की वह अभी साधना पथ में है।

परमपद का इच्छुक सद्गुरुदेव जी की पावन शरण लेकर उनसे शब्द मन्त्र की दीक्षा लेवे—उसकी प्रचार साधना को, सद्गुरुदेवजी की आज्ञा के अनुसार चलने को ही अपना मुख्य धर्म माने, अपने मन का योग उनके ही श्री चरणारविन्दों से करदे। यह है वास्तविक सहज योग। इसे ही गीता के चौथे अध्याय में राजयोग कहा गया है—इसके लिए साधक को इतनी विनय अवश्य कर लेनी चाहिये कि "हे मेरे परब्रह्म-सन्त सद्गुरुदेव जी! मुझे सर्वदा ही अपने चरण-कमलों का दास बनाओ—दास बनने में ही असीम सुख है, परम शान्ति है और है दिव्य आनन्द।

सन्त तुलसीदास जी ने भी इस दोहे के अन्तिम चरण में "दास" शब्द का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है—"दास भये भव पार" अर्थात् दास बनने पर ही भव पार हुआ जा सकता है। दास भाव एक ऐसा उज्ज्वल रत्न है जो एक भक्त की सारी साधना को अलौकिक ज्योति से भर देता है। साधक सब कुछ करता हुआ भी अपने को अकर्त्ता मानता है। कर्त्तृत्व के अभिमान को झटकाते रहना ही गुरु-भक्ति की अन्तिम मञ्जिल पर पहुंचाता है।

अपने में "दासता" की भावना को उतार लेना बड़ा ही उत्तम काम है। दास भाव से अभिमान का लेशमात्र भी शेष नहीं रह जाता। अहन्ता का परित्याग न करना ही भवसागर में बने रहना है।

सार यह है कि भवसागर से पार होने के लिए इन शब्दों का परिपालन करना आवश्यक है—

(१) अपने परमाराध्य देव के चरणारविन्दों में गहरी ममता हो।

(२) जगत के जीवों के साथ समता का भाव रखकर सारा कार्य-व्यवहार करे।

(३) अन्तःकरण में राग-द्वेष-शोक और दुःख में से किसी का भी बीज न हो और अन्त में साधक पुरुष में दासभाव का होना अनिवार्य है। हम भी इस कल्याणकारी पथ पर पग रखकर भवजल-निधि से पार हो जावें।

★

(पृष्ठ ६ का शेष) **गुरुदेव क्या ?**

इसका अर्थ यह है वह नित्य शुद्ध चित्त परमात्मा सृष्टि के शुरूआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है व अनादि सिद्ध है। उसकी तो एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है उसी सूत्र के भाष्य में—

भास्वती टीका में—

पूर्वे गुरवो हिरण्य गर्भादयः कालेनावच्छिद्यन्ते ।

अर्थात्, जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है। यह अधिकृत सीमा है सद्-गुरु तत्व, उससे भी आगे की वस्तु है जिसकी कोई सीमा-अवधि नहीं है। जिसका कोई अन्त नहीं है, वह अनादि और अनन्त शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश डालती है; परमात्मा की सृष्टि के अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। अर्थात्, अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं और वह सद्गुरु तत्व नित्य शुद्ध नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं। अर्थात् ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं। अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है कि जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं ।

अर्थात्, वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े-दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाश है। न वहाँ सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा चमकता है, न बिजली का प्रकाश है, अग्नि का तो कहना ही क्या है। उसीके प्रकाश से यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है। वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को यह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद् का वचन है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुस्वाम ।।

अर्थात्, ये आत्मा बहुत प्रवचनबाजी से, बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसका वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसको यह मिल जाता है उसके शरीर को वह अपना बना लेता है। इस मन्त्र का सीधा-सा मन्त्र यह हुआ—

तुम्हें जानत तुमही है जाई ।

अर्थात् उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार वह नित्य चेतन घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वह स्वयं ही होते हैं। इसीका कारण है कि कभी श्रीराम को श्री शिव उपासना करते हैं। कभी श्री शिव को श्रीराम और कभी श्री शिव की उपासना श्रीकृष्ण, कभी श्रीकृष्ण की उपासना श्री शिव करते हैं। वस्तुतः तात्विकी बात सिद्धान्त की तो यह रही कि जिसके शरीर में आदि तत्व रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरुपद वाच्य है, जैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो ऐसी अवस्था हो चुका है जिसको परम लक्ष्य तक पहुँचने वाली निर्वाणों की श्रेणी ही शेष है जो अपने आपको सर्व-भूतस्थ देखता है और सर्वभूतों को अपने अन्दर देखता है उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है, भेदभाव की शृङ्खला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथनानुसार—

सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः ॥

इस प्रकार का व्यक्ति भी योगयुक्त होने से गुरु पदवाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके ये सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरु है वही शक्तिपात दे सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मनों के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रहा करती है और उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरु की सही परिभाषा नहीं जानते, पुराणों में गुरु की परिभाषा निम्नांकित श्लोकों में प्रकट की है—

गु शब्द स्त्वन्ध करोस्ति
रु शब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकार निरोधित्वाद
गुरु रित्यभिधीयते ॥

अर्थात् 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है अन्धकार का नाश करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरु है और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है, इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने उपदेश दिया—

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवी गुरुं स्मरेत ।
गुरु लोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत् ॥

अर्थात् कल्प भर रहने वाला भी शरीर प्राप्त हो और कितनी ही ऊंची सामर्थ्य वाला हो जाये तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

★

प्राणोत्कर्षकाल में नामस्मरण का महत्व

श्री हिमांशु (नई दिल्ली)

कोई व्यक्ति जिस प्रकार स्मरण या नामोच्चारण की भावना का स्वभाव डालेगा वैसा अन्तिम समय तक रहेगा। शास्त्र का कथन है 'अन्ते मतिः सा गतिः'। प्राण छोड़ते समय दो प्रकार की भावना होती है। एक प्राकृतिक दूसरी शास्त्रीय भावात्मक। प्राकृतिक गति तो अबोध चेतन संसार के गुणों के तारतम्य से स्वतः हो जाती है। शास्त्रीय गति शास्त्रज्ञान पूर्वक भगवत् भजन से प्राप्त होती है। इन प्राकृतिक गतियों के चौरासी लाख भेद हैं। मानो इतनी गतियाँ होती हैं। शास्त्रीय गति का एकमात्र ध्येय और प्राप्य निर्वाण, आनन्द, मोक्ष है। इन दो गतियों का नैतिक प्रवाह दो प्रकार का है। जीव सत्ता का नीचे की ओर से निःसरण होना अर्थात् अधोभाग से प्राणोत्क्रमण होना चौरासी लाख गति भेद वाला है। ऊपरी भाग ब्रह्मरन्ध्र से उस तेजोमय सत्ता की उत्क्रान्ति मोक्षपद की गति है। इस सिद्धान्त पर योगशास्त्र ने कुण्डलिनी-उत्थान और षट्चक्र भेदन पूर्वक सहस्रदल में उस सत्ता को लाने का प्रयास कराया है। यही ऊर्ध्वगति का सिद्धान्त है। श्री शंकराचार्य जी ने इस शक्ति के सहस्रदल संचालन को इस प्रकार लिखा है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरं हुतवहे
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि पवनमाकाशमुपरि।
मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि॥

उपनिषद्गीता में इस भाव को इस प्रकार कहा गया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

ॐ परमात्मा का पवित्र नाम है। इस नाम का उच्चारण करते हुए जिसकी प्राणोत्क्रान्ति होती है वह परमधाम को पहुँचता है। ॐ शब्द को पद्मासन लगाकर पहले परा, तब पश्यन्ती फिर मध्यमा में संचालन कर फिर वैखरी में लाने पर और निरन्तर एकरस से उच्चारण करने पर स्वयं अनुभव हो जाएगा कि कोई शक्ति ऊर्ध्वगामी होती है। इसलिए उपनिषदों में परमात्मा के असंख्य नामों में ॐ को श्रेष्ठ नाम कहा है। पतञ्जलि ने 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' सूत्र से प्रणव जप को श्रेष्ठ बताया है। अन्यान्य मन्त्र जप सब सिद्धिप्रद होते हुए भी मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति का सर्वोत्तम नामजप, प्रणवजप है।

प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्।

इस ॐकार जप पर जिसकी निष्ठा है उसको कोई भय नहीं है। कठोपनिषद् में

नचिकेता के आत्मदर्शनाधिकार में 'एतदालम्बनं श्रेष्ठम्' कहा गया है। इस प्रणव का आश्रय सर्वश्रेष्ठ है।

तथापि प्रणवाख्योऽयं मन्त्रस्सर्वोत्तमोत्तमः।
यमेव तारकं साक्षान्मुक्तं सर्वेऽप्युपासते ॥

अर्थात् सर्व मन्त्रों में ॐ प्रणव मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। सब विद्वान मोक्ष प्राप्ति के लिये इस तारक मन्त्र की उपासना करते हैं।

ॐकार प्रणव की मुख्य चार मात्रा हैं और सूक्ष्म मात्राएं मिलाकर सोलह मात्रा होती हैं। अ–उ–म–ँ–अर्धमात्रा–नादबिन्दु।

अकारः प्रथम प्रोक्त उकारास्तदन्तरम्।
मकारश्चार्धमात्रा च नादबिन्दु ततः परम् ॥

१. अ, २. ऊ, ३. म, ४. अर्धमात्रा, ५. नाद, ६. बिन्दु, ७. काल, ८. कालातीत, ९. शान्ति, १०. शान्त्यतीत, ११. उन्मनी, १२. मनोन्मनी, १३. पुरी, १४. मध्यमा, १५. पश्यन्ति, १६. परा।

उपरोक्त १६ मात्राओं का सूक्ष्म, स्थूल, बीज और तुर्य में विभाग करने पर कुल ६४ मात्रा होती हैं। इनमें प्रकृति और पुरुष का मिलन होने पर १२८ मात्रा होती हैं। और इसमें भी सगुण निर्गुण विभाग से प्रणव की कुल २५६ मात्रा होती हैं।

पंचदशी में कहा गया है—

बुद्ध तत्वेन धी दोष शुन्येनैकान्त वासिना।
दीर्घं प्रणवमुच्चार्यं मनोराज्यं विधीयते ॥

एकान्त में रहकर, निर्मल बुद्धि द्वारा ॐकार प्रणव का दीर्घ उच्चारण का अभ्यास करने से मनोनिग्रह होता है।

ॐ मिति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयातित्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात्, जो पुरुष मेरा एकाक्षर ब्रह्म ॐ का उच्चारण ध्यान-स्मरण करता हुआ अपने शरीर को त्याग देता है। वह पुरुष मेरी परम गति को प्राप्त होता है।

तन्त्रशास्त्र में सम्पूर्ण मन्त्रों का दीपक और सेतु प्रणव को कहा है। माण्डूक्योपनिषद् में चतुर्वर्ग साधन को एकमात्र प्रणव बताया है। इसका अ, ऊ, म के विशुद्ध चक्र और स्वाधिष्ठानदल के संचालन से विकास होता है। यह शब्द जल और आकाश दो तत्वों का विकास करता है। यही वैष्णव और महाशिवधाम का साधन है। जल और आकाश ये दो चैतन्य सत्ता के आधार हैं। उपनिषद् में आता है 'अस्य लोकस्य का गतिः'। इस ब्रह्माण्ड का कहां पर आधार है? उत्तर—'आकाश इति होवाच'। आकाश है। उस आकाश तत्व की परम्परा को विकास करने का विपुल प्रभाव, चमत्कार दिखाने वाला प्रणवोच्चारण है। अर्थात् चाहे आजन्मजीवन त्रिगुणात्मक देह सम्बन्ध से उससे इष्ट-अनिष्ट शुक्ल-कृष्ण कोई भी कर्म क्यों न हुए हों। यदि मृत्युकाल में ॐकार का अभ्यास हो जाए तो उसके

रजस-तम के साथ विलय होकर शुद्ध सत्वगुण का विकास आकाश ब्रह्म उसमें व्याप्त हो जाता है। इसलिए कहा है यदि सद्यजात बालक ओं-ओं न करे तो जानना कि इसमें जीव का विकास नहीं है। रोग-ग्रस्त व्यक्ति जब किसी प्रकार भी चैन नहीं पाता तो जोर से ओह् ओह् कहकर कुछ शान्ति पाता है। बालक जब किसी खेलकूद में जय पाते हैं तब 'ओह् ओह' कहकर आनन्द प्रकट करते हैं। इन व्यावहारिक दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि ॐकार नामोच्चारण मांगलिक है।

मृत्युकाल में उसका साधन इस प्रकार कहा गया है—

इहस्थाने विष्णोरतुलपरमामोदमदुरे

समारोप्य प्राणान् प्रमुदितमना प्राणनिलये।

परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां

पुराणं योगीन्द्र प्रविशति च वेदान्तविदितम् ॥

भ्रूमध्य से जरा उन्मनी के स्थान के शिखर पर अन्तिम समय पर प्रसन्नता से प्राणों को रखकर जो प्राण विसर्जन करता है वह परमपुरुष या परमपद को पहुँचता है। यह शास्त्रीय सिद्धान्त है। अतः महान मोक्षलाभ 'यल्लाभान्नापरो लाभः' जिस नाम को विधिवत उच्चारण करने से प्राप्त होता है वह प्रणव भगवान का सर्वोत्तम नाम है। तन्त्र-शास्त्र का सिद्धान्त है कि मन्त्रों को सिद्ध करने से उसके अधिष्ठात्री देवता का साक्षात्कार हो जाता है। अर्थात् इस पवित्र नामसन्त्र को जो बिन्दुनाद में जपते हैं उनको आकाश-तत्व के रंग और जलतत्व के रंग पहली पहली स्थिति में ज्ञात होते हैं। पीछे जल, आकाश संकलित देवता विग्रह और अन्त में अनेकों जन्मों के दुरित शमन पूर्वक आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। फिर वह दुःखमय संसार में नहीं आता है 'न स पुनरावर्तते।'

नारायण नाम का उच्चारण करने से अजामिल जैसे पापी को भी परम गति मिली। शिवनाम का उच्चारण करने से व्याधादि को उत्तम गति मिली।

शिवेति द्वयक्षरं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।

भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातकराशयः ॥

भगवान गीता में कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः ॥

जो अनन्य भाव से भगवन्नामों का स्मरण करता है, उसको साधु समझना चाहिए। 'क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा' वह तत्काल धर्मात्मा होकर परम शान्ति मोक्षपद को पाता है।

जैमिनि ने कहा है—

हृदि भावयतां भक्त्या भगवन्तमधोक्षजम्।

यः कोऽपि देहिको दोषोजालमाशु विनश्यति ॥

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

कल्पवृक्ष

क्यों रोते हो जग के प्राणी क्यों मन तेरा अकुलाया।
भटक-भटक कर क्यों है हारा, आजा कल्पवृक्ष की छाया॥

कल्पवृक्ष है चरण प्रभु के, सिद्ध गुफा के जो वासी।
ब्रह्मा, विष्णु, शिव अनुचर हैं, रहे शारदा भी दासी॥

प्रभु रामलाल नित्य नाम जपाकर, कट जाये यम की फाँसी।
सिद्ध गुफा का दर्शन करले, कट जायेगी चौरासी॥

सिद्ध गुफा की रज में प्रभु ने, ऐसा है वरदान दिया।
श्रद्धा से जो चाटे इसको, प्रभु ने वाही का कल्याण किया॥

सद्गुरु रूप धरा प्रभुजी ने, साधारण पण्डित बन आये।
प्रभु रामलाल कभी चन्द्रमोहन बन, जग का भार हरन आये॥

जाग- जाग रे मूर्ख प्राणी, क्यों माया में भरमाया।
प्रभु रामलाल का सुमिरन कर ले, निर्मल होजागी काया॥

मेंढ़, शलमा, बिजना तारी, तारी रामरति बाई।
देवहरा बाबा को अपनाकर, खेचरी मुद्रा करवायी॥

लाहड़ी महाशय नित्यानन्द भी, शरण प्रभु की पाते हैं।
हरिहरानन्द अजर अमर बन, शीशागिरि पर रहते हैं॥

श्वांस-श्वांस में जपो प्रभु को, चरण-कमल का करलो ध्यान।
मन वाञ्छित फल मिले सभी को, जग से हो जाये कल्याण॥

बृजमोहन की बात मान ले क्यों गफलत में खोता है।
कल्पवृक्ष के नीचे आजा, भटक-भटक क्यों रोता है॥

श्री बृजमोहन वाशिष्ठ

(पृष्ठ ४० का शेष)

भक्ति से हृदय में जो भगवान का चिन्तन करते हैं उनके शरीर से किया हुआ ऐसा कोई पाप नहीं है जो उससे नष्ट न हो जाए।

कृष्ण कृष्णेति भजतां न भवो नाशुभा गतिः।
प्रधान्ति मानवास्ते तु तत्पदं तमसः परम्॥

'कृष्ण-कृष्ण' इस नाम के भजने वालों का फिर जन्म नहीं होता है और न नीच योनि में ही जाना पड़ता है।

मारुतीय कदम्ब में लिखा है कि हे राम! आपने इतना पुरुषार्थ नहीं किया, जितना कि आपके नाम ने। ऐसा है भगवान के नाम उच्चारण का महत्व। और मृत्यु समय जो इसका आश्रय रहे तो कहना ही क्या?

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरन परमानन्द॥ —कबीर

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008.　　MAY 1996

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

....

अभिमान से बचो

तुम तीक्ष्ण दृष्टि से अपने भीतर निरीक्षण करते रहो और सावधान रहो। जहाँ तक तुममें अभिमान रहेगा, वहाँ तक तुम संघर्ष से नहीं बच सकते। जहाँ तक अज्ञान रहेगा, वहाँ तक तुम बन्धन-दुःख से नहीं बच सकते। जहाँ तक लोभ रहेगा, वहाँ तक क्रोध कलह से नहीं बच सकते। जहाँ तक मोह रहेगा, वहाँ तक व्याधि-उपाधि तुम्हारे साथ लगी ही रहेगी। जहाँ तक तुम में किञ्चित भी जगत्-पदार्थों की वासना रहेगी, वहाँ तक संसार की दासता से मुक्त नहीं हो सकते। जब तुम्हें पाप और प्रलोभन पराजित न कर सकें, तभी तुम्हारी उन्नत अवस्था मानी जा सकती है।

(दिव्य मन्त्रणा से)

प्रकाशक एवं मुद्रक-विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बघई कलां, ताजगंज, आगरा से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा) से प्रकाशित। फोन : 330426